सन्त-मार्ग

सन्त-मार्ग

महाराज चरनसिंहजी

राधास्वामी सत्संग, ब्यास
(ज़िला अमृतसर, पंजाब)

प्रकाशक की ओर से

सन्त-मार्ग में राधास्वामी सत्संग ब्यास के सन्त-सतगुरु महाराज चरनसिंह जी के सन्तमत के मूल सिद्धान्तों को सरल और बोल-चाल की भाषा में समझाया है। वैसे यह पुस्तक आपके द्वारा संकलित 'सन्तों की वाणी' की प्रस्तावना के रूप में लिखी गई है, किन्तु अध्यात्म के जिज्ञासुओं के लाभार्थ इसे अलग पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित किया गया है। यह पुस्तक बहुत लोकप्रिय हुई है और अब इसका पाँचवाँ संस्करण पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है।

डेरा बाबा जैमलसिंह
जून, १९७८

एस० एल० सोंधी
सेक्रेटरी

सन्त-मार्ग

शकर खंड नवात गुड़ माखियों माझा दुद्ध ।
सब्बे वसतु मिट्ठियाँ, रब न पुजन तुद्ध ।।

(बाबा फरीद)

(शक्कर, खाँड, मिश्री, गुड़, शहद, भैंस का दूध, ये सब चीजें मीठी हैं, लेकिन हे परमात्मा ! इनमें से कोई भी तुझ तक नहीं पहुँचती अर्थात् तेरी मिठास को नहीं पहुँचती ।)

महात्मा चाहे किसी जाति, धर्म, देश या समय में क्यों न आये हों, सबका एक ही सन्देश और एक ही अनुभव है । वे दुनिया में जाति और धर्म बनाने के लिए नहीं आते, न ही हमें एक-दूसरे से लड़ना-भिड़ना सिखाने आते हैं, बल्कि वे हमारे अन्दर मालिक की भक्ति का शौक व प्यार पैदा करने और इस देह के बन्धनों से मुक्त करके हमें मालिक से मिलाने के लिए ही आते हैं । लेकिन हम दुनिया के जीव ऐसे मालिक के भक्तों के जाने के बाद बाहर-मुखी हो जाते हैं, कर्म-कांड में उलझ बैठते हैं और उन महात्माओं के असली अनुभवों और उपदेशों को बिल्कुल भूल जाते हैं । उनकी असली शिक्षा और रूहानियत को जातियों और देशों के छोटे-छोटे दायरों में बन्द करने की कोशिश करते हैं और एक-दूसरे से लड़ना-भिड़ना शुरू कर देते हैं । जिन महात्माओं की शिक्षा सारे संसार के लिए होती है, उनके उपदेश को जब हम छोटे-छोटे दायरों में बन्द करके कौमों-मज़हबों की शक्ल देने की कोशिश करते हैं तो इससे ज्यादा उन महात्माओं के साथ हम और क्या बेइंसाफी कर सकते हैं ।

महात्मा समझाते हैं कि यह जो कुछ भी रचना है, दुनिया को जो हम चलती-फिरती देख रहे हैं, यह सब अपने आप ही पैदा नहीं हुई । इसकी रचना करनेवाला कोई न कोई जरूर है । वह कौन

है ? वह एक परमात्मा है, जिसके हमने अनेकों ही नाम अपने प्रेम और भक्ति में आकर रखे हैं। यह जो कुछ भी नजर आ रहा है, इस सबकी रचना उस एक परमात्मा ने की है। हमारी आत्मा उस परमात्मा का अंश है। हम उस सतनाम रूपी समुद्र की बूँदें हैं, उस एक ही सूरज की किरणें हैं। कबीर साहिब फरमाते हैं, "कहु कबीर इहु राम की अंस"। तुलसी साहिब फरमाते हैं—

"चौथे लोक बसत इक स्वामी।
जीव अंस उस अन्तरयामी ॥"

गोस्वामी तुलसीदासजी भी राम-चरित मानस में लिखते हैं—

"ईश्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुख रासी ॥"

यह आत्मा उस एक राम या परमात्मा का अंश है। गुरु नानक साहिब भी यही उपदेश देते हैं—

"आतम महिं राम राम महिं आतम, चीन्हस गुरु वीचारा ॥"

आत्मा के अन्दर वह परमात्मा है और परमात्मा के अन्दर यह आत्मा है। मिसाल के तौर पर, एक बड़ का पेड़ कितना बड़ा होता है, लेकिन उसका बीज कितना छोटा-सा होता है। अगर कोई हमें समझाये कि इस छोटे से बड़ के बीज के अन्दर इतना बड़ा पेड़ है तो आसानी से हमारी समझ में आना बड़ा मुश्किल है। पर जब हम उस बीज को जमीन में बोते हैं तो वह छोटा-सा पौधा बनकर, पालन-पोषण पाकर, कितना बड़ा बड़ का पेड़ हो जाता है। फिर हमें पता लगता है कि उस छोटे से बीज में इतना बड़ा बड़ का पेड़ है और उस पेड़ के अन्दर बड़ का छोटा-सा बीज है। इसी तरह गुरु नानक साहिब फरमाते हैं कि जब सन्तों के उपदेश पर चलकर हम अपने अन्दर खोज करेंगे, तब हमें पता लग जायेगा

कि परमात्मा के अन्दर आत्मा है और जिस परमात्मा की हमें खोज है वह हमारी आत्मा के अन्दर है।

कर्म-सिद्धान्त

हम उस मालिक से बिछुडकर इस माया के जाल में उलझे हुए बैठे हैं। यहाँ आकर हमारी आत्मा ने मन का साथ ले लिया है। हमारा मन इन्द्रियों के भोगों, विषयों-विकारों, शराबों-कबाबों, दुनिया के धन्धों का आशिक है और मन जो कर्म करता है उसका नतीजा साथ-साथ आत्मा को भी भुगतना पड़ता है, क्योंकि आत्मा और मन की गाँठ बँधी हुई है। इस दुनिया को ऋषियों-मुनियों ने कर्म-भूमि कहा है। मुहम्मद साहिब ने इसे आखिरत (परलोक) की खेती फरमाया है। उनके वचन हैं—"अल दुनिया मज़रत उल आखरत।" गोस्वामी तुलसीदासजी रामचरित मानस में कहते हैं—

"करम प्रधान विश्व रच् राखा।
जो जस कीन तास फल चाखा।।"

गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"दोस न देऊ किसै, दोस करमाँ आपणिआँ।
जो मैं कीआ सो मैं पाया, दोस न दीजै अवर जणा।।"

गुरु अर्जुनदेवजी इसका 'करमाँ संदड़ा खेत' कहकर वर्णन करते हैं। इस दुनिया में आकर हम जो जो कर्म करते हैं, अच्छे हों या बुरे, सबका ही नतीजा हमेशा हमें भुगतना पड़ता। इसी प्रकार हज़रत ईसा ने फरमाया है, "मनुष्य जो कुछ बोता है, वही काटेगा" (गलीतियों ६:७)।

खेत में अगर हम मिर्च बोते हैं तो मिर्च की ही फसल इकट्ठी करने के लिए जायेंगे। अगर कोई आम का पौधा लगाता है, वह आम के ही फल खाने का हकदार होता है। कर्म चाहे नेक हों या

बुरे, उनका नतीजा या फल भुगतने के लिए शरीर के बन्धनों में आना पड़ता है। अगर नेक कर्म करते हैं तो सेठ-साहूकार बनकर आजायेंगे, 'सी क्लास' के कैदी होने के बजाय 'ए क्लास' प्राप्त कर लेंगे, झोंपड़ी से बिस्तर उठाकर महल में जा बिछायेंगे, लोहे की जंजीरें उतर जायेंगी और सोने के बन्धन चढ़ जायेंगे। ज्यादा से ज्यादा हम स्वर्ग या बैकुण्ठ तक चले जाते हैं। वे भी भोग योनियाँ हैं, उसके बाद फिर हमें चौरासी के जेलखाने में आना पड़ता है। और अगर बुरे कर्म करते हैं, फिर तो नरक और चौरासी हमेशा तैयार ही रहते हैं। स्वामीजी समझाते हैं—

"करम जो जो करेगा तू। वही फिर भोगना भरना ॥"

सहजोबाई कहती हैं—

"पशु पंछी, नर, सुर, असुर, जलचर, कीट पतंग।
सब ही उतपति करम की, सहजो नाना रंग ॥"

क्या राजा, क्या प्रजा, क्या अमीर, क्या गरीब, क्या औरत, क्या आदमी, हम सब दुनिया के जीव कर्मों के इस जाल में फँसे बैठे हैं। और इन कर्मों के कारण जिस योनि में भी जाकर जन्म लेना पड़ता है उसमें बैठकर दुःख ही दुःख, मुसीबतें ही मुसीबतें सहनी पड़ती हैं। उस मालिक से बिछुड़कर किसी भी योनि में हम कभी सुख और शांति प्राप्त नहीं कर सकते। हर रोज इन्सान की खुराक के लिए हजारों तरह के जानवर जिबह किये जाते हैं। किस तरह उनके गलों पर छुरियाँ चल रही हैं। क्या हम ऐसे मुर्गी, भेड़ या बकरी के जामे में जाकर सुख प्राप्न कर सकते हैं? हम कभी यह विचार ही नहीं करते कि अगर हमें अपने कर्मों के कारण उन जामों में जाना पड़ जाये और हमारी गर्दन पर छुरियाँ और कुल्हाड़ियाँ हों तो हम क्या महसूस करेंगे। कई बार, जिस समय डाक्टर टीका लगाने के लिए एक पतली-सी सुई गरम करता है तो

कई लोगों का शरीर डर से काँपना शुरू कर देता है; हालाँकि वह टीका हमारे फायदे के लिए ही होता है। ऊँट के जामे की हालत देखें, किस तरह उस पर बोझ लदा हुआ है और किस तरह आगे से खींचा जा रहा है। ताँगे के घोड़े की हालत हम देखते हैं कि कितनी सवारियाँ उस पर सवार हैं और किस तरह उस पर चाबुक धड़ाधड़ पड़ रहे हैं। बैल के जामे के बारे में सोचें। उसे सारा दिन किसान हल में जोतते हैं। अगर वह थककर गिर भी जाता है तो भी वे लोहे की आर मार-मारकर उसी तरह हल में चलाये जाते हैं। मतलब यही है कि किसी भी जामे को लेकर परख करें, हरएक में दुःख-ही-दुःख, मुसीबतें-ही-मुसीबतें दिखाई देती हैं।

निचले जामों की हालत तो अलग रही, मनुष्य के जामे के बारे में अच्छी तरह विचार करके देख लें, कितने दुःख और कितनी मुसीबतें हर रोज उठानी पड़ती हैं। हालाँकि इस जामे को 'टाप आफ दि क्रिएशन' (सृष्टि का सिरमौर) कहते हैं, ऋषि-मुनि इसे नर-नारायणी देह कहकर समझाते हैं, मुसलमान फकीर इसे अशरफ-उल-मख्लूकात कहकर याद करते हैं और देवी-देवता भी इस जामे को लोचते हैं, लेकिन फिर भी इस जामे में बैठकर कोई भी सुख और शांति प्राप्त नहीं कर सकता। कोई बीमारी के हाथों अति दुःखी हो जाता है, कोई बेरोजगारी से तंग आ जाता है। किसी को सन्तान पैदा नहीं होती, वह दिन-रात तड़पता है, तो कितनों को बाल-बच्चों ने दुःखी कर रखा है। किसी को कर्जा चुकाना है, वह चिन्ता और फिक्र में सारी रात सो नहीं सकता; किसी को कर्जा वसूल करना है, वह सारा दिन कचहरी में परेशान हो रहा है। हम सरदी और गरमी में हर रोज सड़कों पर कंगालों की हालत देखते हैं कि किस तरह पेट की खातिर वे चिल्ला रहे हैं। इसी तरह अस्पतालों में जाकर बीमारों की चीखें सुनते हैं कि किस प्रकार वे बेचारे दुःखी हो रहे हैं। अगर जेलखानों में अपराधियों

के वृत्तान्त सुनने का मौका मिले तो बड़ी दर्दनाक कहानियाँ सुननी पड़ती हैं। तात्पर्य यही है कि संसार में नजर डालकर देखें तो चारों ओर दुःख-ही-दुःख, मुसीबतें-ही-मुसीबतें नजर आती हैं। कभी भी रेडियो चलाकर या अखबार पढ़कर देख लें, दुनिया में किसी न किसी कौम, मजहब या मुल्क के लड़ाई-झगड़े चलते ही रहते हैं, कितने गरीबों का खून हो रहा है, किस तरह औरतें विधवा हो रही हैं और बच्चे अनाथ बन रहे हैं। जिस दुनिया में यह हालत है कि रोटी-कपड़े की खातिर दिन-रात झटकते और तपड़ते फिरते हैं और मौत का डर हमेशा बना रहता है कि पता नहीं किस समय और किसके हाथों आ जाये, उस नगरी के अन्दर हम सुख और शांति कैसे प्राप्त कर सकते हैं? यही हालत देखकर गुरु नानक साहिब पुकार उठे कि हे नानक! सारा संसार ही दुःखी है। रामचरित-मानस में तुलसीदासजी कहते हैं

"सकल जीव जग दीन दुखारी।"

अगर मनुष्य के जामे में आकर भी हम इस संसार में सुख और शांति प्राप्त नहीं कर सकते तो फिर और किस जामे में प्राप्त कर सकेंगे। महात्मा उपदेश देते हैं कि इस दुनिया में कभी भी किसी को हमेशा के लिए सुख व शान्ति नहीं मिल सकती; क्योंकि यह दुनिया सुख और दुःख का घर है, पुण्य और पाप की नगरी है। हम अपने पुण्य और पाप के कारण यहाँ आकर सुख और दुःख भुगत रहे हैं। अच्छी तरह दुनिया में खोज करके देख लो, कोई शख्स ऐसा नहीं मिलेगा जिसे इस शरीर में बैठकर सुख ही सुख मिलते हों, कभी भी दुःखों का सामना न करना पड़ा हो। या किसी को दुःख ही दुःख प्राप्त होते हों और कभी भी सुख की साँस न आई हो। अनुभव में आता है कि अगर दस दिन सुखों के मिल जाते हैं तो फिर दुःखों का सामना करना पड़ता है और अगर दस दिन दुःख के भुगत लेते हैं तो फिर थोड़ी-बहुत सुख की साँस

ग्रा जाती है। जितने भी दुःख हमें भुगतने पड़ते हैं, ये हमारे पिछले जन्मों में किये हुए पाप हैं, जिनका नतीजा या फल ग्रब भोग रहे हैं। ग्रौर जो भी सुख की साँस ग्रा रही हैं, वे हमारे पिछले जन्मों के पुण्य के कारण हैं। पुण्य ग्रौर पाप के जोड़ या योग के कारण ही हमें मनुष्य का जामा मिलता है, जिसमें बैठकर हम उन पुण्यों ग्रौर पापों का हिसाब दे रहे हैं। ग्रगर हमारे सिर्फ पुण्य होते तो हम स्वर्गों में पहुँच जाते ग्रौर अगर सिर्फ पाप होते तो हम नरकों में सजा भुगतते होते। किसी के ज्यादा पुण्य ग्रौर थोड़े पाप हैं, तो वह ज्यादा सुखी ग्रौर कम दुःखी नजर ग्राता है। किसी का पापों का बोझ ज्यादा हो जाता है ग्रौर पुण्य का कम, तो वह ज्यादा दुःखी है ग्रौर कम सुखी है। यही कारण है कि इस दुनिया में ग्रमीरी व गरीबी, बीमारी ग्रौर तन्दुरुस्ती ग्रौर ऊँच-नीच दिखाई देती है, क्योंकि हरएक जीव के ग्रपने-ग्रपने कर्म हैं जिनका फल वह यहाँ ग्राकर भोग रहा है।

यह दुनिया ग्राज तक न कभी स्वर्ग की नगरी बनी है ग्रौर न कभी बन सकती है। जब हम इतिहास पढ़ते हैं तो पता लगता है कि दुनिया में लड़ाई-झगड़े, सुख-दुःख, ग्रमीरी-गरीबी हमेशा से चली ग्रा रही है। इस दुनिया में उच्च कोटि के महात्मा ग्राये हैं ग्रौर बड़े-बड़े समाज-सुधारक पैदा हुए हैं, फिर भी इसकी हालत पहले से कोई बेहतर नहीं हुई है ग्रौर न ही कभी हो सकती है। सन्तों-महात्माग्रों का ध्येय या मिशन इस दुनिया को स्वर्ग या सुख की नगरी बनाने का नहीं है। बल्कि वे तो हमें ऐसा साधन ग्रौर मार्ग बतलाते हैं जिस पर चलकर हम हमेशा के लिए इस देह के बन्धनों से मुक्त हो जायें ग्रौर फिर इस दुनिया में ही न ग्रायें। दुनिया के काँटे इकट्ठे करने में ग्राज तक किसी ने सफलता प्राप्त नहीं की ग्रौर न ही कोई कर सकता है। लेकिन ग्रगर हम ग्रपने पैरों में मजबूत जूते पहन लें तो वे काँटे ग्रपना ग्रसर नहीं कर सकते। दुनिया की समस्याएँ न ग्राज तक किसी ने हल की हैं, न

कोई हमेशा के लिए हल कर सकता है। लेकिन महात्माओं के उपदेश पर चलकर हम अपना खयाल इतना ऊँचा ले जा सकते हैं कि दुनिया के दुःख-सुख की समस्याएँ हम पर असर ही नहीं कर सकतीं। ईसा मसीह ने बाइबिल में जिक्र किया है—

"मैं तो आया हूँ कि बेटे को उसके पिता से, और बेटी को उसकी माँ से और बहू को उसकी सास से अलग कर दूँ।"

(मेथ्यू १०:३४,३५)

अर्थात् मैं इस दुनिया को सुख और शान्ति की नगरी बनाने नहीं आया बल्कि जीवों को यहाँ से आजाद करने आया हूँ, माँ-बाप, बेटे-बेटियों वगैरह के आपस के मोह के बन्धनों को काटने आया हूँ, एक-दूसरे के लगाव, मोह और प्यार की जंजीरों को तोड़कर उनको मुक्त करने आया हूँ।

निस्सन्देह संसार में परोपकारियों और समाज-सुधारकों की कोई कमी नहीं है। यहाँ अनेकों दयालु और नेक पुरुष हुए हैं। परन्तु सन्तों-महात्माओं का जो परोपकार है उसको और कोई परोपकार नहीं पहुँच सकता। यह इस छोटे से उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है। एक जेलखाने में बहुत से कैदी हैं। एक परोपकारी देखता है कि गरमी का मौसम है और उन कैदियों को ठण्डा पानी पीने को नहीं मिलता। वह उन पर तरस खाकर बरफ डालकर शरबत वगैरह पिलाना शुरू कर देता है। दूसरा परोपकारी सोचता है कि कैदियों को अच्छा खाना नहीं मिलता। वह दया करके अच्छे अच्छे स्वादिष्ट भोजन, मिठाइयाँ आदि बनवाकर उनको खिलाना शुरू कर देता है जिससे कैदी और खुश हो जाते हैं। तीसरा परोपकारी देखता है कि तेज सरदी का मौसम है उन कैदियों के पास सरदो से बचने के लिए गरम कपड़े नहीं हैं। उसने काफी रुपये खर्च करके उनको सरदी से बचाने के लिए गरम कपड़े बनवा दिये। इस परोपकारी ने शायद पहले परोपकारियों से ज्यादा अच्छा परोपकार किया। सभी परोपकारी कैदियों पर तरस खाकर

परोपकार कर रहे हैं, जिससे कैदियों की हालत पहले से ज्यादा अच्छी हो रही है। वे 'सी' श्रेणी से 'ए' श्रेणी के कैदी तो बन गये और उनको जेलखाने में ज्यादा सुख व आराम भी प्राप्त हो गया। लेकिन, इन सब परोपकारियों के होते हुए भी कैदी तो जेलखाने के जेलखाने में ही रहे। चौथे परोपकारी ने, जिसके पास जेलखाने की चाबी थी, कैदियों पर तरस खाकर जेलखाने का दरवाजा ही खोल दिया और उन्हें हमेशा के लिए मुक्त कर दिया। अगर इनमें सबसे ऊँचा परोपकार है तो उस जेलखाने की चाबीवाले का है।

सन्त-महात्मा इस चौरासी के जेलखाने की चाबी लेकर संसार में आते हैं और हमारे अन्दर मालिक से मिलने का शौक व प्यार पैदा करके, हमें रास्ता व युक्ति बतलाकर, धुर-धाम पहुँचाकर हमेशा के लिए इस जेलखाने से आजाद कर देते हैं। इसलिए सन्तों और महात्माओं का परोपकार किसी भी समाज-सुधारक या राजनैतिक नेता के परोपकार से ऊँचा और सच्चा है।

महात्मा हमें उपदेश देते हैं कि जब तक हमारी आत्मा वापस जाकर उस परमात्मा से मिलाप नहीं करेगी, तब तक हम शरीर के बन्धनों और संसार के दुःखों से छुटकारा नहीं पा सकेंगे। कबीर साहिब फरमाते हैं—

"चल हंसा सतलोक को चलिये, छोड़ो यह संसारा हो।"

स्वामीजी का फरमान है—

"धाम अपने चलो भाई। पराये देश क्यों रहना॥"

आत्मा और परमात्मा

हमारी आत्मा स्त्री है और परमात्मा इसका पति है। यह आत्मा रूपी स्त्री परमात्मा रूपी पति के चरणों में जाकर ही खुशी प्राप्त कर सकती है और सुहागिन हो सकती है। गुरु नानक साहिब

फरमाते हैं—

"पिर सच्चे ते सदा सुहागन ।।"

फिर फरमाते हैं—

"जिन्हीं घर जाता आपना, से सुखिए भाई ।।"

जो वापस अपने असली घर पहुँच जाते हैं, वे सदा के लिये सुख और शान्ति प्राप्त कर लेते हैं। मौलाना रूम भी फरमाते हैं—

"ईं जहान ज़न्दाँ व माज़न्दानियाँ,
हज़रा कुन ज़न्दाँ व खुद रा दार हाँ"

अर्थात् यह जहान क़ैदखाना है, जिसमें हम क़ैद हैं। क़ैदखाने की छत में सूराख करके यहाँ से निकल भागो।

बहुत से महात्माओं ने आत्मा और परमात्मा के रिश्ते को स्त्री और पति का रिश्ता कहकर समझाया है, क्योंकि स्त्री हमेशा पति के चरणों में जाकर सुख व शान्ति प्राप्त कर सकती है। अगर एक स्त्री अपने पति के चरणों से दूर हो जाती है तो उसे जो चाहें दुनिया की इज्जत हम दे दें, कितना ही रुपया पैसा दे दें, उसके मन को कभी सुख-शान्ति नहीं आ सकती। वह अपने प्रीतम या पति के प्यार में ही सुख और शान्ति प्राप्त कर सकती है, जैसा कि कहा गया है—

"हरि नाह न मिलिऐ साजनै कत पाइऐ बिसराम।
सरब सिंगार तंबूल रस सन देही सब खाम।"

रामकृष्ण परमहंस परमात्मा और आत्मा के रिश्ते को माँ और बेटे के रिश्ते से याद करते हैं। जब तक बच्चा अपने आपको माँ की निगरानी पर छोड देता है, उसे कोई भी चिन्ता नहीं रहती और हर प्रकार से खुश रहता है। ईसा मसीह ने इस रिश्ते को

बाप और बेटे के रिश्ते से याद किया है, क्योंकि जब तक लड़के के सिर पर बाप की छत्र-छाया है, उसे कोई गम या फिक्र नहीं हो सकता। मतलब यही है कि आत्मा, परमात्मा को पाकर ही सुख और शान्ति प्राप्त कर सकती है।

संसार की अवस्था

सहजोबाई जो कि एक बहुत प्रसिद्ध महात्मा हुई हैं, कहती हैं—

"धनवंते दुखिये सभी, निरधन दुख का रूप।
साध सुखी सहजो कहे, पाया भेद अनूप॥"

इसी प्रकार कबीर साहिब फरमाते हैं कि राजा और प्रजा सब दुःखी ही दुःखी नज़र आते हैं—

"तन धर सुखिया कोई न दीखा, जो दीखा सो दुखिया हो।
जोगी दुखिया जंगम दुखिया, तपसी को दुःख दूना हो।
आसा त्रिसना सबको बियापै, कोई महल न सूना हो।
घाटे बाढ़े सब जग दुखिया, क्या गिरही बैरागी हो।
सुखदेव अचारज दुख के डर से, गरभ से माया त्यागी हो।
साँच कहौं तो कोई न मानै, झूठ कहा नहिं जाई हो।
ब्रह्मा बिसनु महेसुर दुखिया, जिन यह राह चलाई हो।
अवधू दुखिया भूपत दुखिया, रंक दुखी बिपरीती हो।
कहे कबीर सकल जग दुखिया, संत सुखी मन जीती हो।"

तुलसी साहिब भी अपनी वाणी में संसार के दुःखों के बारे में इस प्रकार कहते हैं—

"कोई तो तन मन दुखी, कोई नित उदास।
एक एक दुख सबन को, सुखी संत का दास॥"

गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"नानक दुखिया सब संसार ।।
सो सुखिया जिस नाम आधार ।।"

अर्थात्, सब दुनिया के जीव अपनी अपनी जगह दुख व मुसीबत से भरे हुए बैठे हैं, असली सुख और शान्ति उसी को है जिसने मालिक की भक्ति और प्यार का आसरा लिया हुआ है। हम दुनिया के जीव उस परमात्मा को तो भूले बैठे हैं, उसकी खोज नहीं करते, उसकी भक्ति की ओर हमारा खयाल ही नहीं है और दुनिया की शक्लों और पदार्थों में सुख व शान्ति ढूँढ़ने की कोशिश करते हैं। जितने हम उस परमात्मा को भूल कर सुख और शान्ति ढूँढ़ रहे हैं, उतने ही दिन-रात ज्यादा दुःखी होते चले जा रहे हैं, क्योंकि जिन शक्लों और पदार्थों में सुख ढूंढ़ रहे हैं, वे सब चीजें अस्थायी और नाशवान हैं। फिर उनका सुख किस प्रकार स्थायी हो सकता है ! जब तक हमें वह वस्तु न मिले जो कभी भी नष्ट और फ़नाह न हो, उसे हम अपना न बना लें, हम कैसे सुख व शान्ति पा सकते हैं, क्योंकि जिस चीज के आने में खुशी होती है उसके जाने में वैसा ही दुःख होता है। शादी के समय हमारे मन में कितनी खुशी होती है, लेकिन अगर उसी साथी से झगड़ा या मतभेद हो जाता है तो हम कितने दुःखी हो जाते हैं। जिस सन्तान के जन्म पर हम दावतें करते हैं, खुशियां मनाते हैं, अगर वही सन्तान अयोग्य निकल जाये, कहने में न चले, बीमार हो जाये या परमात्मा उसे वापस बुला ले तो जरा सोचें कि वह हमारे लिये कितने दुःख का कारण बन जाती है। हम दुनिया की धन-दौलत में सुख ढूंढ़ने की कोशिश करते हैं। इसे कमाने के लिए कितने दुःख, कितनी मुसीबतें सहनी पड़ती हैं, अपने कीमती उसूलों को भी कुरबान करते हैं, स्वास्थ्य का भी सत्यानाश कर लेते हैं और कई प्रकार की मानसिक बीमारियाँ सिर पर मोल ले लेते हैं। उसे कमाने में हर तरह की परेशानी उठाते हैं। लेकिन इतने पर भी, उस दौलत को रखने में

कौन-सी शान्ति प्राप्त होती है। अगर बैंकों में रखते हैं तो उनके फेल हो जाने का खतरा है, कभी आय-कर और बिक्री-कर का डर और चिन्ता लगी रहती है। कभी यारों-दोस्तों के मुकर जाने की फिक्र है कि शायद वे रुपया लेकर वापस न करें। और जिस वक्त वही दौलत जाती है, अच्छी तरह दुःखों और मुसीबतों में फँसा कर ही जाती है। कभी डाक्टर की फीसों में होकर निकल जाती है, कभी मुक़दमों में उलझा कर चली जाती है। कितने दुःखों और मुसीबतों से कमाई, लेकिन फिर भी सुख न दिया। उसके जाने पर जो शरीर पर मुसीबतें भुगतनी पड़ती हैं, वे अलग ही हैं। गुरु नानक साहिब का कथन है—

"पापाँ बाझों होवे नाहीं। मोयाँ साथ ना जाई॥"[1]

फिर यह सोचकर कि शायद दुनिया के एशो-इशरत या भोग-विलासों में सुख हो, शराबों-कबाबों के स्वादों में उलझ जाते हैं। लेकिन ये भी हमारे मन को तबाह कर देते हैं, गिरा देते हैं और हमें बीमारियों में फँसा देते हैं। कभी हम हुकूमत के नशे में सुख ढूँढ़ते हैं या हमें राजनैतिक नेता बनने का शौक हो जाता है। जिस समय लोग हमें आदर और मान-बड़ाई देते हैं, हमारे जुलूस निकालते हैं, अखबारों में तारीफ करते हैं, हमारा मन फूला नहीं समाता। लेकिन हम नेताओं के हाल भी रोज पढ़ते हैं। रातों रात तख्ते पलट जाते हैं, दूसरी पार्टी का जोर पड़ जाता है, तो वे कभी गोली का शिकार बना देते हैं, कभी फाँसी के तख्तों पर चढ़ा देते हैं, कभी जेलखाने में डाल देते हैं, कभी अखबारों में मिट्टी पलीत करनी शुरू कर देते हैं। जिस हुकूमत के नशे और दुनिया की मान-बड़ाई में सुख ढूँढने की कोशिश की, वही हमारे लिए दुःख का कारण बन बैठती है। गुरु नानक साहिब का कथन है—

---

१. पाप किये बगैर इकट्ठी नहीं होती और मरने पर साथ नहीं जाती।

"सुख माँगत दुख आगल होई ।।"

सारांश यह कि इस दुनिया में हम कभी भी सुख व शान्ति प्राप्त नहीं कर सकते। ये जो भी थोड़े-बहुत सुख नजर आ रहे हैं, समय पाकर दुःखों में बदल जाते हैं। महात्मा हमें अपने अनुभव से समझाते हैं कि जब तक हमारी आत्मा परमात्मा से मिलाप नहीं करती, हम सुख व शान्ति प्राप्त नहीं कर सकते। संसार की धन-दौलत और शक्लों में से भी हम तब तक ही सुख-शान्ति प्राप्त कर सकते हैं, जब तक हमारा खयाल मालिक की भक्ति की ओर है। उदाहरण के तौर पर, एक बच्चा अपने पिता की अँगुली पकड़कर प्रदर्शनी में तमाशा देखने जाता है। उसे प्रदर्शनी में हर वस्तु बड़ी ही सुन्दर और अच्छी मालूम देती है। कहीं बिजलियां जल रही हैं, कहीं तरह-तरह के खेल हो रहे हैं, कहीं खिलौनों और मिठाइयों की दुकानें सजी हुई हैं। बच्चा समझता है यह खुशी प्रदर्शनी के साज-सामान से मिल रही है। लेकिन अगर गलती से बच्चे से अपने पिता की अँगुली छूट जाती है तो वह चीखें मारना शुरू कर देता है और रोने-चिल्लाने लगता है, हालाँकि प्रदर्शनी के वे ही सब साज-सामान वहीं के वहीं हैं। फिर बच्चा महसूस करता है कि वह प्रदर्शनी में खुशी उतनी देर तक ही पा सकता था जितनी देर तक उसने अपने पिता की अँगुली पकड़ी हुई थी। इसी तरह दुनिया में भी हम सुख और शान्ति उसी समय तक पा सकते हैं, जब तक हमारा खयाल और लिव उस मालिक की ओर रहती है। इसलिये महात्मा हम सबके अन्दर मालिक से मिलने का प्रेम-प्यार पैदा करते हैं। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"हरि की पूजा दुलंभ है सन्तहु, कहना कछू न जाई ।।"

हम सब दुनिया के जीव किसी न किसी के मोह-प्यार में फँसे हुए हैं, किसी न किसी की भक्ति और पूजा जरूर कर रहे हैं। कोई

बेटे-बेटियों से प्यार करता है, कोई कौमों, मजहबों और मुल्कों की भक्ति कर रहा है, कोई धन-दौलत की पूजा करता है। ये शक्लें और ये पदार्थ हमारी भक्ति और प्रीति के योग्य नहीं, क्योंकि इनकी प्रीति और भक्ति हमें बार-बार देह के बन्धनों में खींचकर ले आती है। मालिक की भक्ति और प्यार ही हमें वापस ले जाकर उस परमात्मा से मिलाता है। इसलिए, महात्मा समझाते हैं कि उस मालिक की भक्ति की महिमा कभी बयान ही नहीं की जा सकती। उसकी भक्ति और प्यार के द्वारा वापस जाकर हम मालिक ही बन जाते हैं। भीखाजी फरमाते हैं—

"भीखा भूखा को नहीं, सबकी गठड़ी लाल।
गिरह खोल नहीं जानते, तिस बिध भए कंगाल॥"

परमात्मा एक है

सब महात्माओं का यही अनुभव है कि जिस परमात्मा से हम मिलना चाहते हैं, वह एक है। यह नहीं कि हिन्दुओं का कोई और या सिक्खों व ईसाइयों का कोई और है। गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"एक पिता एकस के हम बालक॥"

और

"सभना जीआँ का एको दाता॥"

शेख सादी कहते हैं—

"बनी आदम अज़ाये यक दीगर अंद,
चो दर आफ़रीनश ज़ि यक जोहर अंद।"

"अर्थात् सब मनुष्य एक ही स्रोत से निकले हैं और एक-दूसरे के

भाई हैं। जितने भी दुनिया के जीव हम देख रहे हैं उन सबको पैदा करने वाला एक ही परमात्मा है। मुसलमान फ़कीर उस परमात्मा को रब्बुल आलमीन कहकर याद करते हैं, कि सारे संसार का एक ही परमात्मा है। और हमेशा से वही परमात्मा चला आ रहा है। यह नहीं कि पहले कोई और परमात्मा था या अब कोई और है। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"जग जीवन साचा एको दाता ॥"

सारे जग को जीवन देनेवाला एक ही दाता है और वह हमेशा से सच्चा है, अर्थात् वह जन्म-मरण से रहित है। जपजी साहब के शुरू में ही गुरु नानक साहिब बड़ी अच्छी तरह से वर्णन करते हैं—

"एक ओ सतनाम करता पुरख ॥"

"आदि सच, जुगादि सच, है भी सच, नानक होसी भी सच ॥"

कि अनुभव के द्वारा मुझे अपने अन्तर में एक ऐसी सत्ता या शक्ति मिली है जो सृष्टि के आदि से, युगों के आदि से सच ही चली आ रही है अर्थात् जो कभी नष्ट या फ़नाह नहीं होती। वह एक परमात्मा है। उस मालिक के अलावा जो कुछ भी हम आँखों से देख रहे हैं, सबको नष्ट या फनाह हो जाना है। कोई भी चीज यहाँ स्थिर नहीं है। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"हरि बिन सभ कुछ मैला सन्तहु ॥"<br>"थिर नाराइन थिर गुरु थिर साचा वीचार ॥"

इसी तरह और जगह लिखते हैं—

"कूड़ राजा कूड़ परजा कूड़ सब संसार।
कूड़ मंडप कूड़ माड़ी कूड़ बैठनहार ॥

कूड़ सोना कूड़ रूपा कूड़ पहननहार।
कूड़ काया कूड़ कपड़ कूड़ रूप अपार ।।
कूड़ मियाँ कूड़ बीवी खप होए खुआर।
कूड़ कूड़े नेहूं लागा विसरिया करतार ।।
किस नाल कीजे दोसती सब जग चलणहार ।।"

कि हमारा यह शरीर भी कूड़ और नाशवान है। और इसके अन्दर बैठकर जिस दुनिया को हम अपना बनाने की कोशिश करते हैं, जिसके साथ प्यार किये बैठे हैं, यह भी कूड़ है। दुनिया में कोई भी चीज हमारी दोस्ती के योग्य नहीं, सिवाय उस परमात्मा के, क्योंकि उसके सिवाय हरएक चीज नाशवान है। सिर्फ एक मालिक ही है जो हमेशा रहता है।

जाति और धर्म

उस मालिक की कोई कौम नहीं है, उसका कोई मज़हब या मुल्क नहीं है। न ही उस मालिक को कोई जाति या रंग-रूप है। अगर हम महात्माओं की वाणियों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें तो पता लगेगा कि वे हमारे विचारों को जात-पाँत, कौम, मज़हब व मुल्क के भेद-भावों से ऊंचा उठाकर हमारे अन्दर परमात्मा की भक्ति का शौक और प्रेम-प्यार पैदा करते हैं। गुरु अर्जुनदेवजी समझाते हैं—

"वरन जाति चिहन नहीं कोई, सब हुकमे सृसटि उपाइदा।"

जिस परमात्मा ने अपने हुक्म के द्वारा इस सृष्टि की रचना की है, अगर उसका कोई रंग-रूप और जाति नहीं है तो हमारी आत्मा की—जो उस परमात्मा का अंश है, उस परमात्मा से ही निकली है और वापस जाकर उसमें ही समाना चाहती है—कैसे कोई जाति हो सकती है? जब समुद्र की कोई जाति नहीं है तो

उसकी एक बूंद की क्या जाति हो सकती है ? अगर सूरज की कोई कौम या मजहब नहीं है तो एक मामूली किरण की कौन-सी कौम, कौन-सा मज़हब हो सकता है ? ये सब जात-पाँत के झगड़े मनुष्य के अपने पैदा किये हुए हैं। परमात्मा ने तो सिर्फ मनुष्य पैदा किये हैं। हम अपने आपको जात-पाँत, कौम, मजहब व मुल्कों के छोटे-छोटे दायरों में बाँट रहे हैं और एक-दूसरे के भेद-भाव में फँसे हुए हैं। गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"जित्थे लेखा मंगिए तित्थे देह जात न जाई ॥"

जिस जगह हमारे कर्मों का हिसाब-किताब होगा, उस जगह न तो कोई हमारी जात-पाँत के बारे में पूछेगा और न हमारा शरीर ही वहाँ पहुँच सकेगा। किसी का शरीर अग्नि के सुपुर्द हो जाता है, किसी का मिट्टी के अन्दर ही दवा रह जाता है। जात-पाँत या कौमों-मजहबों का सम्बन्ध इस शरीर के साथ ही रह जाता है। अन्त में किसी की जात-पाँत जल जाती है, किसी की मिट्टी में ही दबी रह जाती है। कबीर साहिब अपनी वाणी में उपदेश देते हैं—

"जात-पाँत पूछे ना कोय।
हरि को भजे सो हरि का होय ॥"

किसी को भी आपकी जात-पाँत नहीं पूछना है; जो परमात्मा की भक्ति करता है वह परमात्मा का रूप हो जाता है। जहाँ हमारे कर्मों का हिसाब-किताब होगा वहाँ कोई यह सवाल नहीं पूछनेवाला है कि तुम हिन्दू थे या ईसाई, हिन्दुस्तान से आए हो, अमेरिका से आये हो या अफ्रीका से। उस जगह तो हमारे भक्ति-भाव, इश्क और प्रेम की ही कदर होती है। इसी तरह साईं बुल्लेशाह, जो जाति के सैयद थे और जो मुसलमानों में एक बेधड़क महात्मा हुए हैं, अपने कलाम में स्पष्ट करते हैं—

"अमलाँ उत्ते होन निबेड़े, खड़ियाँ रहणगिआँ जाताँ ।।"

जो अपने अमलों और कर्मों पर ध्यान देते हैं, वे ही परमात्मा को मंजूर हैं । जो जात-पाँत के अभिमान में फँसे हैं, उनकी उस दरगाह में कोई क़दर नहीं है । तुलसी साहिब भी अपनी वाणी में यही समझाते हैं—

"नीच नीच सब तर गये, संत चरन लवलीन ।
जातो के अभिमान से, डूबे बहुत कुलीन ।।"

जो अपने आपको नीचा समझता है, जिसके अन्दर नम्रता और दीनता है, जो सन्तों के चरणों से प्यार रखता है, उनके उपदेश पर चलता है, वह इस भव-सागर से पार हो जाता है । जिनको जात-पाँत का अभिमान है वे इस भव-सागर में गोते खाते हैं । कौमों की कौमें, मजहबों के मजहब इस जात-पाँत के अभिमान में डूबे जा रहे हैं । फिर फरमाते हैं—

"बड़े बड़ाई पाय कर रोम रोम अहंकार ।
सतगुरु के परचे बिना चारों वरन चमार ।।"

अर्थात्, बड़े लोग बड़ाई पाकर रोम-रोम में अहंकार से भर जाते हैं । सतगुरु से मिले बिना, उनके प्यार के बिना चारों वर्ण ही नीच हैं । पलटू साहिब भी हमें यही समझाते हैं—

"पलटू ऊँची जात का मत कोई करे हंकार ।
साहिब के दरबार में केवल भगति पियार ।।"

मालिक की दरगाह में केवल भक्ति और प्यार की ही कदर है । भक्ति और प्यार ही हमें वापस ले जाकर उस मालिक से मिलायेंगे । किसी के मन में यह विचार न हो कि मैं ब्राह्मण के घर पैदा हो गया हूँ मुझे ही मालिक से मिलने का गौरव प्राप्त हो

सकता है, या मैं हिन्दू से ईसाई बन गया हूँ, अब सिर्फ मैं ही परमात्मा से मिल सकूँगा। या कोई यह सोचे कि मैं एक नीच जाति में जन्म ले चुका हूँ, मैं शायद अब कभी भी परमात्मा की भक्ति नहीं कर सकूँगा। गुरु नानक साहिब नें तो इस जात-पाँत का यहाँ तक खण्डन किया है—

"बिन नामे सब नीच जात हैं, विसटा के कीड़े होंय ॥"

जो मालिक के नाम की कमाई नहीं करता, उससे ज्यादा नीच जाति वाला और कौन हो सकता है, क्योंकि वह मौत के बाद नीच और अधम योनियों में जायेगा। आगे फरमाते हैं—

"जिस नाम रिदै सोई बड़ राजा। जिस नाम रिदै तिस पूरे काजा ॥
जिस नाम रिदै सो सब ते ऊँचा। नाम बिना भ्रमि जोनी मूचा ॥
जिस नाम रिदै सो जीवन मुकता। जिस नाम रिदै तिस सब ही जुगता ॥

फिर कहा है—

"सबद बसे सोई जन ऊँचा सच्चे आप समावणिआँ ॥"

और

"नानक होर पातसाहियाँ कूड़याँ, नाम रते पातसाह ॥"

जो मनुष्य-शरीर प्राप्त करके उस मालिक के शब्द या नाम को अपने मन में बसा लेता है, उठते-बैठते एक शब्द की कमाई में लग जाता है, वही व्यक्ति सबसे ऊँचा है क्योंकि वह मौत के बाद जाकर सच्चे परमात्मा के अन्दर समा जाएगा। अतएव, जो मालिक की जाति, कौम, मजहब और मुल्क है, वही हमारी आत्मा की जाति, कौम, मजहब व मुल्क है, इसलिए हरएक महात्मा हमारे खयाल को पक्षपात या भेद-भाव के इन छोटे-छोटे दायरों से ऊपर ले जाने की कोशिश करता है और हमारे अन्दर उस

परमात्मा के सच्चे नाम की कमाई और प्यार का शौक पैदा करता है।

परमात्मा हमारे अन्दर है

सभी महात्मा हमें अपने अनुभव से समझाते हैं कि जिस परमात्मा को हम ढूंढ़ना चाहते हैं और जिस परमात्मा से मिलकर हमारी आत्मा हमेशा के लिए जन्म-मरण के दुःखों से बच सकती है, वह कहीं बाहर नहीं है। वह हरएक के शरीर के अन्दर बैठा हुआ है। जिसे मिला है, अपने अन्दर ही मिला है और जिसे भी मिलेगा अपने अन्दर ही मिलेगा। इसलिए अगर कोई प्रयोगशाला है जिसके अन्दर जाकर हमें परमात्मा से मिलने की खोज या रिसर्च करना है, तो वह केवल हमारा शरीर ही है। सब महात्माओं का यही उपदेश है। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"सब कुछ घट महि बाहर नाहीं। बाहर ढूंढें सो भरम भुलाहीं।"

और

"इस काया अन्दर जग जीवन दाता बसे। सभना करे प्रतिपाला॥"

जिस परमात्मा ने सारे जग को जीवन दिया है, इस सृष्टि की रचना की है और जो सबका दाता है, सबकी सँभाल और रखवाली करता है, वह परमात्मा इस शरीर के अन्दर रहता है। आप फिर समझाते हैं—

"इस गुफा में अखुट भंडारा।
जिस बिच बसे हरि अलख अपारा॥"

हमारा यह शरीर केवल आत्मा के ही रहने की गुफा नहीं है। वह परमात्मा भी, जो कि अलख और अगम है, इस गुफा अर्थात् शरीर के अन्दर ही है। फिर एक और स्थान पर लिखते हैं—

"काया अन्दर आपे बसे अलख न लखिआ जाई ।
मनमुख मुगध बूझे नाहीं बाहर भालण जाई ।।"

वह परमात्मा खुद हमारे शरीर के अन्दर बैठा हुआ है । हम उसे बाहरी आँखों के द्वारा बाहर ढूँढने की कोशिश करते हैं । वह हमें कैसे नजर आ सकता है ? हम मनमुख हैं, बेसुध हैं, गँवार हैं, जो चीज हमारे घर के अन्दर है, हम उसे बाहर ढूँढ रहे हैं । कबीर साहिब का भी यही अनुभव है—

"ज्यों तिल में तैल है, ज्यों चकमक में आग ।
तेरा प्रीतम तुझमें, जाग सकै तो जाग ।।"

आप फिर फरमाते हैं—

"ज्यों नैनन में पुतली, त्यों खालिक घट माहिं ।
मूरख लोग जाने नहीं, बाहर ढूँढन जाहिं ।।
जा कारन जग ढूँढ्या सो तो घट ही माहिं ।
परदा दिया भरम का ताँते सूझे नाहिं ।।"

जिस तरह तिल में तेल है और पत्थर में आग है, उसी तरह परमात्मा भी हमारे शरीर के अन्दर है । जिस प्रकार आँखों के अन्दर पुतली है, उसी प्रकार इस दुनिया को बनानेवाला हमारी देह के अन्दर है । हम लोग मूर्ख हैं, अन्धे हैं, उसे अपने शरीर के अन्दर तो ढूँढते नहीं, बाहर तलाश करने की कोशिश करते हैं । जिसकी खोज के लिए हम जंगलों-पहाड़ों में भटकते फिरते हैं, जिसे हम मन्दिरों-मस्जिदों में ढूँढते फिरते हैं, वह हमारे शरीर के ही अन्दर है । हमारे और मालिक के बीच में भ्रम का परदा है इसलिए वह हमें दिखायी नहीं देता । इसी प्रकार महात्मा चरनदास जी का अनुभव है—

"दूध मद्ध ज्यों घीव है, मेंहदी माहीं रंग।
जतन बिना निकसे नहीं, चरनदास लो ढंग।।
जो जाने या भेद को, और करे परवेस।
सो अबिनासी होत है, छूटें सकल कलेस।।"

इसी प्रकार तुलसी साहिब, जो कि उत्तर प्रदेश में दक्कनी बाबा के नाम से बड़े प्रसिद्ध महात्मा हुए हैं, अपनी वाणी में कहते हैं—

"क्यों भटकता फिर रहा तू ऐ तलाशे यार में।
रास्ता शाहरग में है दिलबर पै जाने के लिये।।"

क्यों उस परमात्मा की तलाश में बाहर भटकते फिर रहे हो। परमात्मा हरएक के शरीर के अन्दर है और उस तक पहुँचने का रास्ता भी परमात्मा ने हरएक के अन्दर ही रखा है। ईसा-मसीह ने भी बाइबिल में यही समझाया है, "खुदा की बादशाहत तेरे अन्दर है।"

पलटू साहिब का भी यही अनुभव है—

"साहब साहब क्या करे, साहब तेरे पास।"

कि वह परमात्मा तो चौबीस घंटे हमारे साथ-साथ फिरता है, अर्थात् वह परमात्मा हरएक के शरीर के अन्दर है, तुम बाहर किसको दिन-रात ढूंढते फिर रहे हो। गुरु अमरदासजी फरमाते हैं—

"सदा हजूर दूर नह देखो रचना जिन रचाई।।"

इसी तरह दादू साहिब फरमाते हैं—

"दादू जीव न जाने राम को, राम जीव के पास।
गुरु के शबद वह बाहिरा, तातें फिरे उदास।।

दूरि कहे ते दूरि है, राम रह्या भरपूर।
नैनहुँ बिन सूझै नहीं, ताते ओय कित दूर।।
कोई दौड़े द्वारिका, कोई काशी जाहिं।
कोई मथुरा को चलै, साहिब घट ही माहिं।।
सब घट माहिं रमि रह्या, बिरला बूझै कोय।
सोई बूझै राम को, जो राम सनेही होय।।"

कि जिस परमात्मा ने दुनिया की रचना की है वह चौबीस घण्टे तुम्हारे साथ-साथ है। लेकिन हम दुनिया के जीव अपनी देह के अन्दर जाकर कभी परमात्मा की खोज करने की कोशिश नहीं करते। हमेशा उसे या तो जंगलों और पहाड़ों में ढूँढने की कोशिश करते हैं, या उसे ग्रंथों-पोथियों में से पाना चाहते हैं या समझते हैं कि वह गुरुद्वारों, मन्दिरों, मस्जिदों या गिरजों में ही मिल सकता है। कभी विचार आता है कि वह कहीं आसमानों के पीछे छिपा बैठा है। लेकिन जिस जगह वह परमात्मा है, उस जगह तलाश नहीं करते। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"गुरमुख होवे सो काया खोजे।
होर सब भरम भुलाई।।"

कि जो मालिक के असली भक्त और प्रेमी हैं, जिनको किसी सन्त- महात्मा की संगति मिल चुकी है, वे परमात्मा को शरीर के अन्दर ढूँढते हैं। बाकी सब दुनिया के जीव भ्रमों में फँसकर यहीं भूले फिरते हैं। साईं बुल्लेशाह कहते हैं—

"बुल्ला शौह असाँ तो वख नहीं। बिन शौह थीं दूजा कख नहीं।।
पर वेखण वाली अक्ख नहीं। ताँ जान जुदाइयां सहन्दी है।।"

कबीर साहब ने तो बड़े जोरदार लफ्जों में हमारे खयाल को इस वहम और भ्रम से निकालने की कोशिश की है। आप समझाते हैं—

"कंकर पत्थर जोड़ कर मस्जिद लई चुनाय ।
ताँ चढ़ मुल्ला बाँग दे, बहरा भया खुदाय ।।
मुल्ला चढ़ किलकारिया, अलख न बहरा होय ।
जिस कारन तू बाँग दे, दिल ही अन्दर सोय ।।
तुरक मसीते हिन्दू देहरे, आप आप को धाए ।
अलख पुरख घट भीतरे, ता को लखा न जाए ।।"

पत्थर और ईंटें इकट्ठी करके हम मस्जिद या मालिक के रहने की जगह बना लेते हैं और उनके ऊपर चढ़कर मौलवी ऊँची-ऊँची बाँग देकर परमात्मा को पुकारता है, जैसे कि परमात्मा बहरा है और हमारी आवाज उस तक नहीं पहुँच सकती। आप समझाते हैं कि ऐ मुल्ला! वह खुदा बहरा नहीं है। इतना चिल्लाने की क्या जरूरत है? जिस खुदा के लिये तू इतने जोर-जोर से चिल्ला रहा है वह तो तेरे अन्दर ही मौजूद है। मुसलमान उस खुदा को मस्जिद के अन्दर ढूँढ रहे हैं। हिन्दू मन्दिरों में उस परमात्मा की तलाश कर रहे हैं। सिक्ख और ईसाई गुरुद्वारों और गिरजों में जाकर खोज कर रहे हैं। लेकिन वह अलख पुरुष तो उनके शरीर के अन्दर ही है और अन्दर ही मिलेगा। इसी प्रकार तुलसी साहिब समझाते हैं—

"नकली मन्दिर मसजिदों में जाय सद अफसोस है,
कुदरती मसजिद का साकिन दुख उठाने के लिये।"

साईं बुल्लेशाह क्या आज़ादी के साथ कहते हैं—

"भट नमाज़ाँ चिकड़ रोज़े कलमे दे सिर स्याही ।।
बुल्ले नूँ शौह अंदरों मिलिया, भुली फिरे लोकाई ।।"

फिर फरमाया है—

"बेद कुरान पढ़ पढ़ थके, सिजदे करदिआँ घिस गए मत्थे ।
ना रब तीरथ ना रब मक्के, जिन पाया तिन दिल विच यार ।।"

जो हमने परमात्मा के रहने के स्थान बनाये हैं, कितना अफसोस है कि हम उन स्थानों में जाकर दिन-रात उस परमात्मा की खोज कर रहे हैं और जिस मस्जिद या शरीर के अन्दर वह परमात्मा खुद बैठा हुआ है, वह शरीर उस मालिक की याद में दिन-रात दुःख उठा रहा है। अगर कोई सच्चे से सच्चा गुरुद्वारा, मन्दिर, मस्जिद या गिरजा है तो वह केवल हमारा अपना शरीर है। कबीर साहिब का फरमान है—

"सब घट पूरन पूर रह्या है, आदि पुरख निरबानी ॥"

सेन्ट पाल ने भी इस शरीर को जीवित परमात्मा का मन्दिर कहकर पुकारा है। ऋषियों-मुनियों ने इसे नर-नारायणी देह कहकर समझाया है; वह देह जो परमात्मा ने खुद पैदा की है, जिसके अन्दर परमात्मा खुद बैठा हुआ है और जिस देह के अन्दर ही हमारी आत्मा को परमात्मा होने का फख्र या गौरव प्राप्त हो सकता है। यही गुरु अमरदास साहिब समझाते हैं—

"हरि मंदर एहु सरीर है, गिआन रतन परगट होए ॥"

हमारा शरीर ही मालिक के रहने का असली हरि-मन्दिर है और उस मालिक का सच्चा ज्ञान उसी के अन्दर से प्राप्त हो सकता है। जरा गौर करके देखें कि उस परमात्मा के रहने के लिए जो स्थान हमने खुद बनाये हैं, जैसे मस्जिद, मन्दिर, गुरुद्वारे, गिरजे वगैरह उनमें हम परमात्मा की खोज कर रहे हैं बनिस्बत उस स्थान के जो परमात्मा ने खुद अपने रहने के लिये बनाया है और जिसमें वह खुद बैठा हुआ है। हम अपने इन धार्मिक स्थानों को कितना साफ-सुथरा रखते हैं। जरा गंदगी वहाँ नहीं रहने देते, धूप वगैरह जलाते हैं, वहाँ कोई बुरा कर्म या बुरी बात नहीं करते, किसी से कोई अनुचित शब्द तक नहीं कहते, क्योंकि हम समझते हैं कि यह मालिक के रहने का स्थान है। उन स्थानों की पवित्रता

बनाये रखना चाहते हैं। लेकिन जो जगह मालिक ने खुद अपने रहने के लिए बनाई है और जिसके अन्दर वह परमात्मा खुद बैठा हुआ है—यानी हमारा शरीर—उसको किस प्रकार दिन-रात गन्दगी से भर रहे हैं। कभी माँस और शराब उसके अन्दर डालते हैं, कभी उसके अन्दर बैठकर बुरे-बुरे विचार उठाते हैं और पाप व खोटे कर्म करते हैं। अपनी बनाई हुई चीज़ की तो कदर करते हैं, जो मालिक ने खुद अपने रहने के लिये जगह बनाई है उसकी कदर नहीं करते। और कई बार तो इतिहास पढ़कर बड़ी शर्म महसूस होती है कि अगर हमारे बनाये हुए किसी मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे या गिरजे को, गलती से किसी दीवार में एक दरार भी आ जाती है, तो हम उस परमात्मा के बनाये हुए हरि-मन्दिरों को हज़ारों की संख्या में गिराने को तैयार हो जाते हैं।

"हिन्दू कहत हैं राम हमारा, मुसलमान रहमाना।
आपस में दोऊ लड़ मरत हैं, मरम कोई न जाना॥"

(कबीर साहिब)

इतिहास बतलाता है कि इन धर्म स्थानों को लेकर कितने युद्ध और झगड़े हुए, कितनी खून खराबियाँ हुईं, कितने बच्चे अनाथ हुए, कितनी औरतें विधवा हुईं। और हम इस पर फ़ख्र और गौरव का अनुभव करते हैं, अपने आपको धर्म के रक्षक, मजहब के रखवाले समझते हैं और शहीदाने मिल्लत[१] कहलवाते हैं। अगर एक दूसरे की हत्या और खल्के खुदा[२] का खून बहाने से ही परमात्मा मिल सकता हो तो इससे ज्यादा सस्ता सौदा और आसान तरीका और क्या हो सकता है। लेकिन हमारा यह खयाल गलत है। जिनका परमात्मा से प्यार है वे परमात्मा की सृष्टि और उसके पैदा किये हुए मनुष्य से भी प्यार करते हैं। परमात्मा एक ही है और उस

(१) धर्म के लिये शहीद। (२) परमात्मा की सृष्टि।

परमात्मा नें ही सबको पैदा किया है, हरएक के अन्दर वह खुद ही बैठा हुआ है और हरएक को अपने अन्दर ही उसकी खोज करना है, अगर फिर भी कोई किसी से नफरत करता है तो वह परमात्मा से नफरत करता है। अगर एक कौम दूसरी कौम को बुरा-भला कहती है और एक मज़हब दूसरे मज़हब वालों के खून का प्यासा है, तो मेरा अपना खयाल है कि उस कौम और मज़हब के अन्दर अभी तक मालिक से मिलने का शौक व प्यार ही पैदा नहीं हुआ, क्योंकि जिसका उस परमात्मा से प्यार है, वह परमात्मा की रचना और पैदाइश से भी जरूर प्यार करेगा। अगर हम किसी से नफरत करते हैं तो इसका मतलब हुआ कि हम उस परमात्मा से ही नफरत कर रहे हैं, जो कि उसके अन्दर बैठा हुआ है और जिसने उसे पैदा किया है। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"जिअ जंत सभ तिसदे सभना का सोई ॥
मंदा किसनो आखीऐ जे दूजा होई ॥"

कि हे परमात्मा ! सब दुनिया के जीव तेरे अपने पैदा किये हुए हैं और तू खुद ही हरएक के अन्दर बैठा हुआ है। नीच और बुरा तो मैं उसे कहूं जिसके अन्दर कोई और हो या जिसे किसी और ने पैदा किया हो। कबीर साहिब भी हमें यही उपदेश देते हैं—

"अव्वल अल्लह नूर उपाइया कुदरत के सभ बंदे ॥
एक नूर ते सभ जग उपजिया कौन भले को मंदे।"

इसी प्रकार बाइबिल में ईसा मसीह ने समझाया है, "वह सच्ची ज्योति जगत में आने वाले हरएक मनुष्य को प्रकाशित करती है।" उस परमात्मा का नूर और प्रकाश हरएक के अन्दर है, न कोई बुरा है, न कोई अच्छा है, सब अपने अपने कर्मों के अनुसार अपना-अपना हिसाब दे रहे हैं। इसलिए, महात्मा समझाते हैं कि उस परमात्मा की खोज और तलाश बाहर नही करनी चाहिए, अपने

शरीर और देह के अन्दर ही खोज करनी चाहिये।

हौमें की रुकावट

अब मन में स्वाभाविक ही यह विचार आता है कि अगर परमात्मा हरएक के अन्दर है तो हमें अपने अन्दर नजर क्यों नहीं आता ? हमारे अन्दर किस चीज़ की रुकावट है ? वह रुकावट हमारे अन्दर से किस प्रकार दूर हो सकती है ? गुरु अर्जुनदेवजी लिखते हैं—

"एका संगति इकतु गृह बसते मिल बात न करते भाई।
अंतर अलख न जाइ लखिआ विच परदा हौमें पाई ॥"

कि दोनों इकट्ठे ही रहते हैं और एक ही घर में दोनों का निवास है, लेकिन आपस में मिलाप नहीं है। आत्मा भी शरीर के अन्दर है, परमात्मा भी इस शरीर के अन्दर है, लेकिन न कभी आत्मा ने परमात्मा को देखा, न कभी आत्मा सुहागिन हुई। फिर खुद ही जवाब देते हैं कि परमात्मा जरूर हमारे शरीर के अन्दर है लेकिन हमारे और मालिक के बीच हौमें या अहं की बड़ी जबरदस्त रुकावट है। गुरु नानक साहिब का कथन है—

"हौं विच आया, हौं विच गया, हौं विच जंमिआ, हौं विच मूवा।
हौं विच दिता, हौं विच लिया, हौं विच खटया, हौं विच गया ॥
हौं विच सचिआर कुड़िआर, हौं विच नरक स्वरग अवतार ॥"

फिर फरमाते हैं—

"हौमै दीरघ रोग है, दारू भी इस माहिं।
किरपा करे जे आपनी तां गुरु का सबद कमाहिं ॥"

और कहते हैं—

"जीवन मुकत सो आखिए जिस विचों हौमै जाए।"

कि हम जीते-जी मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं अगर हमारे अन्दर से हौमैं की रुकावट दूर हो जाये। गुरु अमरदासजी बयान करते हैं—

"हरि जीऊ साचा ऊँचो ऊँचा, हौमैं मार मिलावणिआँ।"

वह परमात्मा सच्चा है, ऊँचे से ऊँचा है अर्थात् सचखण्ड का रहनेवाला है, लेकिन जब तक हम हौमैं की रुकावट दूर नहीं करेंगे, उस परमात्मा से नहीं मिल सकते। यही दादू साहिब समझाते हैं—

"दादू दावा दूर कर, बिन दावे दिन काट।
केते सौदा कर गये, पंसारी की हाट।"

हे दादू ! दुनिया में किसी चीज़ का दावा न कर। तेरा इस दुनिया में कुछ भी नहीं है। यह सब-कुछ उस परमात्मा का है। इसको परमात्मा का ही समझ, अपना बनाने की कोशिश न कर। न कभी ये किसी के बने हैं और न ही बन सकते हैं। दुनिया में बड़े-बड़े राजा-महाराजा इस संसार को अपना बनाते-बनाते चले गये, यह दुनिया उनकी न बन सकी। यह हमारा मोह और हौमैं ही है जो बार-बार हमें इस देह के बन्धनों में लाता है। बाइबिल में ईसा मसीह ने भी जिक्र किया है, "मैं फिर तुमसे कहता हूँ कि परमेश्वर के राज्य में धनवान के प्रवेश करने की बनिस्बत ऊँट का सूई के नाके में से निकल जाना कहीं आसान है।" (मेथ्यू १९:२४)

सुई के नाके में से ऊँट का निकल जाना सम्भव नहीं, इसी तरह अमीर और धनवान लोगों का जो कि दुनिया की दौलत और सुख में डूबे हुए हैं परमात्मा से मिलना असंभव है। बुल्ले शाह का भी यही कलाम है—

"दुई दूर करो कोई शोर नहीं, इहाँ तुरक हिन्दू कोई होर नहीं।
सब साध लखो कोई चोर नहीं, हरि घट-घट बीच समाया है॥"

इसी तरह कबीर साहिब फरमाते हैं—

"काम तजे तो क्रोध न जाई, क्रोध तजे तो लोभा।
लोभ तजे अहंकार न जाई, मान बड़ाई शोभा॥"

हौमें क्या है ? हम जो सारे दिन सोचते हैं कि यह मेरी औलाद है, मेरी जायदाद है, मेरी धन-दौलत है, ये सब-कुछ वास्तव में तो उस परमात्मा के हैं। हम अपने आपको उस परमात्मा से अलग समझे बैठे हैं, और इनको अपना बनाने की कोशिश करते हैं। लेकिन ये आज तक न किसी के बने, न कभी बन सकते हैं। हम इन्हें अपना बनाने की जो कोशिश करते हैं वह हमें इनके मोह व प्यार में उलझा देती है और हमारा इन शक्लों और पदार्थों के साथ इतना प्यार हो जाता है कि रात में हमें इनके ही सपने आने शुरू हो जाते हैं और मौत के समय इनकी ही शक्लें हमारी आँखों के सामने आकर सिनेमा की तस्वीरों की तरह फिरनी शुरू हो जाती हैं। जिस ओर भी आखिरी वक्त हमारा खयाल होता है, हम दुनिया के जीव उसी प्रवाह में बह जाते हैं। यह दुनिया की शक्लों और पदार्थों का मोह और प्यार है जो कि हरएक जीव को बार-बार देह के बन्धनों की ओर खींचकर ले आता है। ईसा मसीह भी बाइबिल में कहते हैं, "और मनुष्य के बैरी उसके परिवार वाले ही होंगे।" (मेथ्यू १०:३६)।

फिर वे आगे बतलाते हैं कि हमारे सच्चे रिश्तेदार कौन हैं—"जो कोई मेरे परमपिता की इच्छा पर चले वही मेरा भाई, बहिन और माता है।" (मेथ्यू १२:५०)।

हमारा मन

दुनिया की शक्लों और वस्तुओं से कौन प्यार किये बैठा है ? यह हमारा मन है। इसलिए, अगर आत्मा और परमात्मा के बीच में कोई रुकावट और परदा है तो वह केवल हमारे मन का परदा

है। गुरु नानक साहिब अपनी वाणी में लिखते हैं, "मन जीते जग जीत।" अगर हम अपने मन को वश में कर लेते हैं तो सारी दुनिया के बनानेवाले को ही वश में कर लेते हैं। दुनिया में अगर कोई हमारा दुश्मन है तो सिर्फ हमारा मन ही है। यह कभी किसी को अपना बनाता है, तो कभी किसी को बेगाना समझता है। अच्छी तरह विचार करके देख लें, यह सिर्फ हमारा मन ही है जिसके ताबे या वशीभूत होकर कौम-कौम की दुश्मन है, मज़हब मज़हब का दुश्मन है, एक देश दूसरे देश को तबाह करना चाहता है, भाई भाई को देखना नहीं चाहता और लोग हमेशा एक-दूसरे के गले काटने की तरकीबें और उपाय सोचते रहते हैं। यह सब-कुछ हमारा मन ही हमसे करवा रहा है। जब तक हम अपने मन को वश में नहीं करते हम वापस जाकर परमात्मा से मिलने के काबिल कैसे हो सकते हैं।

मन को वश में करने का क्या मतलब है? जिस प्रकार हमारी आत्मा उस परमात्मा का अंश है, इसी प्रकार हमारा मन भी कोई छोटी चीज़ नहीं है। यह ब्रह्म का अंश है, त्रिकुटी का रहनेवाला है, लेकिन यहाँ माया के जाल में फँसकर अपने आपको भूल बैठा है। यहाँ आकर इसने आत्मा का साथ लिया हुआ है। आत्मा और मन की गाँठ बँधी हुई है। जब तक आत्मा मन का साथ नहीं छोड़ती, उसे कभी अपने आपका पता नहीं लग सकता और न कभी वह अपने असल या मूल से मिलने के योग्य हो सकती है। मन का साथ आत्मा उस समय ही छोड़ सकेगी जब मन वापस जाकर ब्रह्म या त्रिकुटी में अपने ठिकाने पर पहुँच जायेगा। हमें जो भी कोशिश करनी है, वह मन और आत्मा की गाँठ खोलने की करनी है। इसीलिए सुकरात ने कहा है, 'अपने आपको पहचानो।' यही गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"सो जन निरमल जिन आप पछाता।"

वह व्यक्ति निर्मल और पवित्र है जो अपने आपको पहचानने के योग्य बन जाता है। कबीर साहिब भी यही फरमाते हैं—

साधो, सतगुरु अलख लखाया। जब आप-आप दरसाया ॥"

स्वामीजी महाराज भी फरमाते हैं—

"आप आपको आप पहचानो। कहा और का नेक न मानो ॥"

अपने आपको पहचानने का मतलब यह है कि हमें मन और माया के दायरे से पार जाना है। हमें अपनी आत्मा पर से सूक्ष्म, स्थूल और कारण के तीनों गिलाफ या आवरण उतारने हैं और सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण—तीनों गुणों से पार होना है। तब जाकर अपने आप का पता लगेगा, अपने असल की पहचान होगी। हमारी आत्मा तो बिलकुल निर्मल, पवित्र और पाक थी, लेकिन मन का साथ लेने के कारण अति गन्दी और मैली हो चुकी है। उदाहरण के तौर पर, बादलों में पानी कितना साफ-सुथरा होता है, परन्तु जब वह बरसात बनकर जमीन पर आता है तो कितना गन्दा हो जाता है, उसमें से बदबू तक आनी शुरू हो जाती है। वह अपनी असलियत को बिलकुल भूल बैठता है और अपने आपको गन्दगी का ही रूप समझना शुरू कर देता है। परन्तु जब उसे फिर सूरज की तपिश लगती है और वह भाप बनकर उस गन्दगी को छोड़ता है तब उसे अपने आपका होश आता है कि मैं कौन हूँ। जब उसको अपने आपका पता लगता है तब फिर वह अपने असल या मूल के बारे में सोचता है और सीधा जाकर बादल में, अपने असल में ही समा जाता है। यही हमारी आत्मा की हालत है। यह माया के जाल में फँसकर मन के ताबे हो चुकी है, और मन आगे इन्द्रियों के भोगों का आशिक बन चुका है और जो जो कर्म मन करता है उसका नतीजा साथ-साथ आत्मा को भी भुगतना पड़ता है। जब तक यह मन का साथ नहीं छोड़ेगी, यह कभी भी अपने असल के

अन्दर समाने के काबिल नहीं हो सकेगी। महात्मा चरनदासजी फरमाते हैं—

"इन्द्रियन के बस मन रहे, मन के बस रहे बुद्ध।
कहो ध्यान कैसे लगे, ऐसा जहाँ विरुद्ध॥"

एक बिजली का तेज़ बल्ब चाहे कितनी ही रोशनीवाला क्यों न हो, परन्तु अगर हम उसके चारों ओर बहुत से काले कपड़े लपेटना शुरू कर दें तो उसकी रोशनी कम होते-होते खत्म हो जायेगी। जैसे-जैसे हम वे काले कपड़े उतारते जायेंगे, उसकी रोशनी और ज्योति प्रकट होना शुरू हो जायेगी और सब कपड़े उतर जाने पर उसकी रोशनी पूर्ण रूप से प्रकट हो जायेगी। इसी प्रकार, जैसे-जैसे हमारी आत्मा मन का साथ छोड़ती जायेगी या मन के आवरण उस पर से उतरते जायेंगे वह अपने आपको पहचानने के काबिल बनती जायेगी। इसीलिए कहा है, परमात्मा के साक्षात्कार से पहले आत्म-साक्षात्कार होना जरूरी है।

हमें अब जो भी कोशिश करना है, जो कुछ भी तरीका सोचना है, वह अपने मन को वश में करने का ही सोचना है, मन को वापस ब्रह्म या त्रिकुटी में ले जाने की ही कोशिश करना है। हर-एक धर्म का यही उद्देश्य है। हम दुनिया के जीव अपनी-अपनी अक्ल के अनुसार हजारों युक्तियों और तरीकों से मन को वश में करने की कोशिश करते हैं। जप-तप करते हैं, पूजा-पाठ करते हैं, ग्रंथ, पोथियाँ, वेद, शास्त्र आदि पढ़ते हैं, दान-पुण्य करते हैं, कई प्रकार के हवन वगैरह भी करते हैं। यहाँ तक कि घर-बार छोड़-कर जंगलों-पहाड़ों में छिपकर बैठ जाते हैं। ये सब साधन सिर्फ मन को वश में करने के लिए ही करते हैं। हम हठ-कर्मों के द्वारा नियम व संयम के द्वारा अपने खयाल को दुनिया से अलग करने की कोशिश करते हैं। लेकिन क्योंकि हमारा खयाल और किसी चीज़ से जाकर नहीं जुड़ता इसलिए लौटकर दुनिया में ही भटकना

शुरू कर देता है। दुनिया में से अपने खयाल को जबरदस्ती निकालना ऐसे ही है जैसे एक जहरीले साँप को किसी टोकरी या पिटारी में बन्द कर देना है। जितनी देर वह टोकरी के अन्दर बन्द रहता है, हम उसके ज़हर और दंश से बचे रहते हैं। लेकिन जब भी उसको निकलने का मौका मिलेगा, वह जरूर डसेगा, कभी भी अपनी आदत से बाज नहीं आ सकता। अतएव, एक साँप को टोकरी में बन्द कर देने से हम हमेशा के लिए उसके जहर से निश्चिन्त नहीं हो सकते। हमें अपनी जान का खतरा लगा ही रहता है। अगर उसी साँप को पकड़कर उसकी विष की थैली ही निकाल दें, तो वह विष-हीन हो जाता है, डस नहीं सकता और हम हमेशा के लिए निर्भय हो जाते हैं, चाहे उसे अब अपने गले में डाले फिरें।

इसी प्रकार, हम जंगलों-पहाड़ों में छिपकर, ग्रन्थ-पोथियाँ, वेद-शास्त्र पढ़कर, बाल-बच्चों को त्यागकर समझ लेते हैं कि हमारा मन वश में आ गया है। पर जिस समय दुनिया का सामना करना पड़ता है, वे ही इच्छाएँ और तृष्णाएँ जो हमारे अन्दर दबी पड़ी थीं, हमें फिर उँगलियों पर नचाना शुरू कर देती हैं, बल्कि सच तो यह है कि साधारण मनुष्यों से भी हमारी हालत गई-बीती हो जाती है। जितना हम मन को दबाते हैं, उतना ही वह विद्रोह करता है। जबरदस्ती मन को वश में करना ऐसा ही है जैसा कि सुलगते हुए कोयलों पर राख डाल देना। देखने में मालूम देता है कि आग बुझी हुई है लेकिन जब जरा भी हवा चलती है, वह राख उड़ जाती है और आग फिर से भड़क उठती है। इसी प्रकार, जब भोगों और विषयों की आँधी आती है तो यह मन फिर जागकर बेकाबू हो जाता है और पहले से भी ज्यादा मुँहजोर हो जाता है। जबरदस्ती मन को काबू करना ऐसे ही है जैसे हम किसी बदमाश को पुलिस के हवाले कर देते हैं। जब तक वह पुलिस की हिरासत में रहता है, तब तक हम उसकी शरारतों से जरूर बचे रहते हैं। लेकिन जब पुलिस उसे आज़ाद कर देती है, वह बस्ती में आकर

फिर वैसी ही शरारतें शुरू कर देता है। अगर उस बदमाश को पुलिस के हवाले करने के बजाय हम समझा-बुझाकर एक शरीफ आदमी बना लेते हैं तो हम हमेशा के लिए उसकी शरारतों से बच जाते हैं। अतएव, महात्मा समझाते हैं कि हठ-कर्मों के द्वारा या संयम के द्वारा हम अपने मन को कभी भी वश में नहीं कर सकते। कुछ समय के लिए जरूर कुछ शान्ति या आराम प्राप्त कर लेंगे।

अगर हम मन को वश में करना चाहते हैं तो मन की आदत और स्वभाव को अच्छी तरह समझना जरूरी है। हमारा सबका अनुभव है कि मन लज्जत या स्वादों का आशिक है। एक चीज से प्यार करता है, अगर दूसरी चीज या शक्ल उससे अच्छी दिखाई देती है तो पहली को छोड़कर दूसरी की ओर दौड़ना शुरू कर देता है। कोई भी मोह या प्यार हमेशा के लिये हमारे मन को बाँध कर नहीं रख सकता। हरएक का अपने-अपने जीवन का अनुभव है कि वे शक्लें और वे पदार्थ जिन्हें हम किसी समय अपना बनाने की कोशिश करते थे और समझते थे कि उनके बगैर हमारा जिन्दा रहना ही मुश्किल या बिल्कुल असम्भव है, आज उन्हीं शक्लों से मन नफरत कर रहा है और उन्हें देखना तक गवारा नहीं करता। यह हम आम तौर पर कहते हैं कि मन विविधता का आशिक है। एक ही चीज को देख-देखकर, खा-खाकर हम ऊब जाते हैं। अपनी सारी जिन्दगी को आँखों के आगे रखकर गौर से देखें कि बचपन में हमारा माता-पिता से कितना प्यार था, अगर दो मिनिट भी माता हमारी आँखों से दूर हो जाती थी तो हम रोना और चीखना-चिल्लाना शुरू कर देते थे। पर जब दो-तीन भाई-बहिन हो जाते हैं तो वही माता का प्यार भाई-बहिनों के प्यार में बदलना शुरू हो जाता है। जब स्कूलों और कालेजों में जाते हैं, वही प्यार यार-दोस्तों से हो जाता है। शादी के बाद पत्नी और बाल-बच्चों में जाकर समा जाता है। बूढ़े होते हैं तो कौमों, मज़हबों, मुल्कों तक में जाकर फैल जाता है। एक प्यार है, कितनी शक्लें बदलता

है ! लेकिन कोई भी प्यार हमारे मन को हमेशा के लिए बाँध नहीं सकता, क्योंकि हमारा मन लज्जत का आशिक है । जितने समय तक हमारे मन को दुनिया की लज्जत और मोह व प्यार से ऊँची और सच्ची लज्जत, मोह या प्यार नहीं मिलता, वह दुनिया की लज्जत व मोह-प्यार को किसी भी हालत में छोड़ने के लिए तैयार नहीं होता ।

वह लज्जत किस चीज की है जिसे पाकर हमारा मन दुनिया के मोह और प्यार को छोड़ देगा ? महात्मा अपना अनुभव बतलाते हैं कि वह शब्द और नाम की लज्जत है । वह लज्जत इतनी ऊँची, पवित्र और निर्मल है कि उसे पाकर हमारा मन अपने आप ही दुनिया के मोह व प्यार को छोड़ देता है । जिसको हीरे और जवाहरात मिल जाते हैं, वह कौड़ियों के लिये दर-ब-दर ठोकरें नहीं खाता । लड़कियाँ गुड़ियों और खिलौनों से तब तक खेलती हैं जब तक उनकी शादी नहीं हो जाती । वैराग्य कभी भी हमारे अन्दर लगाव या आसक्ति पैदा नहीं कर सकता, सिर्फ लगाव ही हमारे अन्दर वैराग्य या अनासक्ति पैदा कर सकता है । अगर एक लड़की को शादी से पहले समझाया जाये कि माता-पिता का प्यार छोड़ दे, भाई-बहिनों, सखियों-सहेलियों को भूल जा ताकि तेरी शादी कर दें, तो यह उसके लिये कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव होगा । जब उसका अपने पति से प्यार हो जाता है तो माता-पिता, भाई-बहिन, सखियों-सहेलियों को आप ही भूल जाती है । एक कंगाल कौड़ियाँ माँगता फिरता है, उससे अगर हम एक कौड़ी भी छीनने की कोशिश करेंगे तो वह मरने-मारने को तैयार हो जायेगा । लेकिन जब हम उसके हाथ में अशर्फी दे देंगे तो उसकी कौड़ियोंवाली मुट्ठी अपने आप खुल जायेगी ।

गुरु नानक साहिब मन के बारे में समझाते हैं—

"पाठ पढ़ियो अरु बेद बिचारियो निवलि भुअंगम साधे ॥
पंच जना सिउ संग न छुटकिओ अधिक अहम बुधि बाधे ॥

पिआरे इन बिधि मिलन ना जाई, मैं कीए करम अनेका ॥"

मन को वश में करने के लिये हमने अगिनत ग्रन्थों-पोथियों का पाठ किया, षट-दर्शन, अठारह पुराण, गीता-भागवत और वेदों-उपनिषदों पर भी विचार किया प्राणायाम, नौलि कर्म और हठ-योग की कठिन क्रियाएँ करके भी देखीं, कुण्डलिनी साधने का भी यत्न किया, लेकिन पाँच डाकुओं—काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार—से पीछा न छूटा। गुरु साहिब आगे समझाते हैं—

"मौनी भइओ कर पाती रहिओ नगन फिरिओ बन माहीं ॥
तट तीरथ सभ धरती भ्रमियो दुबिधा छुटकै नाहीं ॥
मन कामना तीरथ जाइ बसियो सिरि करवत धराए ॥
मन की मैल न उतरै इह बिधि जे लख जतन कराए ॥"

कि बोलना बन्द करके चुप भी रहे, घर-बार छोड़कर जंगलों-पहाड़ों में भी गये, कपड़े, बरतन वगैरह भी त्यागे और सिर्फ हाथों में ही खाना खाया, धरती के सब तीर्थों में भी घूमे, सारी धरती की परिक्रमा भी की, और भी ऐसे कितने ही कठिन साधन किये, पर फिर भी मन का मैल न उतरा। मन को वश में करने के लिये काशी जाकर करवत भी लिया अर्थात् आरे के द्वारा अपने शरीर को चिरवा लिया। इस प्रकार के और भी लाखों जतन किये पर मन की दुबिधा न गई। साईं बुल्लेशाह भी यही पुकार-पुकार कर कहते हैं—

"न खुदा मसीते लभदा, न खुदा खाना काबे।
न खुदा कुरान किताबाँ, न खुदा नमाजे।
न खुदा मैं तीरथ डिठा, ऐवें पैंडे झाके।[1]
बुल्ला शोह जद मुरशद मिल गया टूटे सब तगादे।"

---

१. यों ही व्यर्थ भटका।

मन को वश में करने का तो सिर्फ एक ही उपाय है कि इसे शब्द या नाम की लज्जत दी जाये। जैसे जैसे यह शब्द और नाम का स्वाद पायेगा, वैसे ही इसका दुनिया से मोह और प्यार टूटना शुरू हो जाएगा। शब्द की कशिश और लज्जत इसे दुनिया से अलग कर देगी। स्वामीजी महाराज समझाते हैं—

"कोट जतन से यह नहिं माने। धुन सुनकर मन समझाई।।
जोगी जुक्ति कमावें अपनी। ज्ञानी ज्ञान कराई।।
तपसी तप कर थाक रहे हैं। जती रहे जत लाई।।
ध्यानी ध्यान मानसी लावें। वह भी धोखा खाई।।
पंडित पढ़ पढ़ वेद बखाने। विद्या बल सब जाई।।
बुद्धि चतुरता काम न आवे। आलम रहे पछ ताई।।
और अमल का दखल नहीं है। अमल शब्द लौ लाई।।
गुरु मिले जब धुन का भेदी। शिष्य विरह धर आई।।
सुरत शब्द की होय कमाई। तब मन कुछ ठहराई।।"

एक और शब्द में स्वामीजी महाराज उपदेश देते हैं—

"सोता मन कस जागे भाई। सो उपाव मैं करूँ बखान।।
तीरथ करे वर्त भी राखे। विद्या पढ़ के हुए सुजान।।
जप तप संजम बहु विधि धारे। मौनी हुए निदान।।
अस उपाव हम बहुतक कीन्हे। तो भी यह मन जगा न आन।।
खोजत खोजत सतगुरु पाए। उन यह जुक्ति कही परमान।।
सतसंग करो संत को सेवो। तन मन करो कुरबान।।
सतगुरु शब्द सुनो गगना चढ़। चेत लगाओ अपना ध्यान।।
जागत जागत अब मन जागा। झूठा लगा जहान।।
मन की मदद मिली सूरत को। दोनों अपने महल समान।।
बिना शब्द यह मन नहिं जागे। करो चाहे कोई अनेक विधान।।"

एक अन्य शब्द में स्वामीजी महाराज अच्छी तरह से समझाते हैं—

"जिन्होंने मार मन डाला। उन्हीं को सूरमा कहना ॥
बड़ा बैरी यह मन घट में। इसी का जीतना कठिना ॥
पड़ो तुम इस ही के पीछे। और सब ही जतन तजना ॥
गुरु की प्रीत कर पहिले। बहुरि घट शब्द को सुनना ॥
मान दो बात यह मेरी। करे मत और कुछ जतना ॥"

गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"सच्चे नाम सदा मन सच्चा। सच सेवे दुख गवावणिआँ ॥"

कि सिर्फ सच्चे शब्द और सच्चे नाम की कमाई करके ही हमारा मन निर्मल, पवित्र और पाक हो सकता है। सच्चे शब्द की कमाई करके ही हम चौरासी के दुःखों से बच सकते हैं। आप एक और बहुत अच्छा दृष्टान्त देते हैं—

"गुरुमुख गारुड जे सुने, मंने नावों संतोष ॥"

अगर किसी को साँप डस लेता है तो उसके इलाज के लिये, उसका जहर उतारने के लिये किसी डाक्टर के पास जाते हैं। उसकी दवा के द्वारा साँप का जहर उतर जाता है। इसी प्रकार अगर हम मन रूपी साँप का जहर अपने अन्दर से निकालना चाहते हैं तो हमें सन्तों के पास जाकर अपने खयाल को शब्द और नाम के साथ जोड़ना होगा। मन को वश में करने का और कोई इलाज या तरीका नहीं है। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"राम नाम मन बेधिआ अवर कि करी विचार ॥"

यह हमारा मन जो विषयों-विकारों में, दुनिया के मोह और प्यार में फँसकर हिरन की तरह भटकता फिरता है, जब राम नाम के साथ जुड़ जाता है तो हमेशा के लिए बिंध जाता है। और कोई विचार करना या इस मन को वश में करने का और कोई उपाय

करना व्यर्थ है। यही स्वामीजी महाराज समझाते हैं—

"सुरत शब्द कमाई करना। सब जतन दूर अब धरना ॥"

सच्चा नाम

सभी सन्तों ने अपनी वाणी में नाम या शब्द की महिमा की है। हमारे जितने भी मजहब हैं, हरएक के रीति-रिवाज या शरीयतें अपनी अपनी अलग-अलग हैं। लेकिन जो असली रूहानियत है, सत्य का मूल रूप है, रूहानियत की जड़ है वह हरएक मज़हब की तह में एक ही है और सन्त-महात्मा हमारे अन्दर सिर्फ इस रूहानियत को ही प्राप्त करने का शौक व प्यार पैदा करते हैं, उसी की प्राप्ति का तरीका या साधन समझाते हैं। इस रूहानियत को भिन्न-भिन्न महात्माओं ने विभिन्न जातियों, धर्मों और देशों में आकर भिन्न-भिन्न लफ्जों या शब्दों में समझाने की कोशिश की है। ऋषि-मुनि इसको राम नाम, राम-धुन, निर्मल नाद, दिव्य-ध्वनि या कई और शब्दों से याद करते हैं। गुरु नानक साहिब इसे आम तौर पर 'शब्द' या 'नाम' कहकर याद करते हैं। वे इसी को गुरु की वाणी, धुर की वाणी, सच्ची वाणी, अमर, हुक्म, अकथ कथा, हरि कीर्तन, और निर्मल नाद कहकर भी याद करते हैं। मुसलमान फकीर इसे कलमा, इस्मे-आजम, बाँगे-सुलतानी, कलामे-इलाही या सुलतान-उल-अज़कार कहते हैं। ईसा ने इसे 'वर्ड' या 'लोगास' कहा है। इसे ऋग्वेद में 'वाक्' कहा गया है—"यावत् ब्रह्म श्रेष्ठम् तावती वाक्" अर्थात् शब्द इतना महान है जितना कि ब्रह्म। सत्पथ ब्राह्मण में आता है, "वाक् एव ब्रह्म" अर्थात् शब्द ही ब्रह्म है।

हमें लफ्जों के साथ कोई विवाद नहीं है। हमें तो उस रूहानियत की खोज करना है जिसकी हर महात्मा महिमा करता है और जिसको पाकर हमारा मन बाँधा जा सकता है, वश में आ जाता है और वापस जाकर अपने ठिकाने पर पहुँच जाता है। जब

तक हमें यह समझ न आये कि महात्मा शब्द, नाम, वाक् या वाणी किसको कहते हैं, वह किस जगह है, किस प्रकार हमें उसके साथ अपना खयाल जोड़ना है और उसकी हमें क्या जरूरत है, तब तक हम बेशक किसी भी महात्मा की वाणी या ग्रन्थ-पोथी पढ़ते रहें, हम कभी भी उससे पूरा-पूरा फायदा नहीं उठा सकते।

महात्माओं की वाणी में जगह-जगह सच्चे शब्द, सच्चे नाम या सच्ची वाणी का जिक्र आता है। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"सच्चे सबद सच्ची पत होई ॥"

इससे मन में यह विचार जरूर आता है कि शायद और भी कोई वाणी, शब्द या नाम ऐसा है जो सच्चा नहीं है। सच्चे शब्द का मतलब उस वाणी, शब्द या नाम से है जो कभी नष्ट नहीं होता, फना नहीं होता। महात्मा समझाते हैं कि शब्द या नाम दो प्रकार का है। एक वर्णात्मक शब्द है, दूसरा धुनात्मक। वर्णात्मक शब्द हम उसे कहते हैं जो हमारे लिखने, पढ़ने और बोलने में आता है। हमने अपने-अपने प्यार में आकर उस परमात्मा के जितने भी नाम रखे हुए हैं, अल्लाह, वाहिगुरु, राधास्वामी, हरिओम, परमात्मा, परमेश्वर आदि, ये सब हमारे वर्णात्मक शब्द हैं, क्योंकि ये लिखने, पढ़ने और बोलने में आते हैं। हमारे कई मुल्क हैं, हर मुल्क में वहाँ की कई-कई भाषाएँ या बोलियाँ हैं और एक-एक बोली में हम कितने ही लफ्जों के द्वारा उस परमात्मा को याद करते हैं। हज़ारों, अनेकों महात्मा संसार में आये हैं और हजारों अनेकों ही अभी आयेंगे। उन्होंने अनेकों लफ्जों के द्वारा उस परमात्मा को याद किया है और अनेकों ही लफ्जों के द्वारा अभी याद करेंगे। पिछले रखे हुए नाम हम भूलते जाते हैं और अपने प्यार में आकर कई और नाम रखते चले जा रहे हैं। हरएक नाम का हम इतिहास बतला सकते हैं या उसकी तहकीकात अथवा खोज कर सकते हैं और उसका समय निश्चित कर सकते हैं। स्वामीजी

महाराज को आये सिर्फ सौ वर्ष हुए हैं. उनके आने के बाद हमने उस मालिक को 'राधास्वामी' कहना शुरू कर दिया। परन्तु इस बात का हम कभी विचार ही नहीं करते कि स्वामीजी महाराज के आने से पहले भी हम दुनिया के जीव यहीं थे, और वही मालिक था और हम किन्हीं और लफ्जों से उस मालिक को याद करते ही थे। इसी प्रकार, श्री गुरु नानकदेवजी के आने के बाद हमने उस परमात्मा को 'वाहिगुरु' कहकर पुकारना शुरू कर दिया। लेकिन आपको भी आये केवल पांच सौ वर्ष हुए हैं। मुहम्मद साहिब के आने के बाद हम उस मालिक को 'अल्लाह' कहकर याद करने लगे। उनको भी आये हुए अधिक समय नहीं हुआ, सिर्फ चौदह सौ साल हुए हैं। और इसी तरह रामचन्द्रजी महाराज के आने के बाद उस मालिक को हम 'राम राम' कह कर पुकारने लगे। आपको आये दस हजार साल या इससे भी ज्यादा समय हुआ होगा। तात्पर्य यही है कि हरएक लफ्ज की तारीख बतायी जा सकती है, समय या मियाद तय की जा सकती है।

वर्णात्मक शब्द भी चार प्रकार के हैं, वैखरी, मध्यमा, पश्यंती और परा। पहला वह जो ज़बान से बोला जाता है, जैसे हम हर रोज एक-दूसरे से बातचीत करते हैं। दूसरा वह जो कण्ठ में धीरे-धीरे बोलते हैं। तीसरा हृदय में और चौथा वह जो नाभि में योगी-जन हिलोर उठाते हैं। ये सभी शब्द वर्णात्मक हैं और इनमें से कोई भी सच्चा नाम नहीं है। स्वामीजी महाराज अपनी वाणी में फरमाते हैं—

> "नाम निर्णय करूँ भाई। दुधा विधि भेद बतलाई॥
> वर्ण धुनात्मक गाऊँ। दोऊ का भेद दरसाऊँ॥
> वर्ण कहु चाहे कहु अक्षर। जो बोला जाय रसना कर॥
> लिखन और पढ़न में आया। उसे वर्णात्मक गाया॥"

जो नाम लिखने, पढ़ने और बोलने में आता है, जिसकी अवधि

तय की जा सकती है और तारीख बताई जा सकती है उसे महात्मा वर्णात्मक शब्द कहते हैं। जिस नाम की हरएक महात्मा महिमा करता है, जिस नाम की कमाई से हमें मुक्ति प्राप्त करना है, मन को वश में करना है, आत्मा तथा मन की गाँठ को खोलना है और अपने आपको पहचान कर मालिक को पहचानने के योग्य बनना है वह धुनात्मक नाम है, सच्चा नाम है। महात्मा केवल उस सच्चे नाम की ही महिमा करते हैं। वह सच्चा नाम न लिखने में आता है, न पढ़ने में और न बोलने में। उसको हुजूर महाराजजी[1] बिना लिखा कानून (अनरिटन लॉ) और अन-बोली वाणी (अनस्पोकन लेंग्वेज) कह कर समझाया करते थे। ईसा मसीह ने भी बाइबिल में उसी नाम का इशारा किया है। वे कहते हैं, "क्योंकि वे देखते हुए भी नहीं देख पाते और सुनते हुए भी नहीं सुन पाते।"

(मेथ्यू १३:१३)।

इसी प्रकार गुरु नानक साहिब उस नाम की महिमा करते हैं—

"अखीं बाझहु वेखणा विणु कन्ना सुनणा ॥
पैराँ बाझहु चलणा विणु हत्थां करणा ॥
जीभै बाझहु बोलणा इउ जीवत मरणा ॥
नानक हुकम पछाणि कै तउ खसमै मिलणा ॥"

इस शब्द को न तो बाहर की आँखें देख सकती हैं, न कान सुन सकते हैं, न उस जगह हमारे ये पैर हमें लेकर पहुँच सकते हैं, न वह चीज इन हाथों से पकड़ी जा सकती है। उस वस्तु को प्राप्त करने के लिये और उसे प्राप्त करके परमात्मा से मिलने के लिए हमें जीते-जी मरना पडता है। ये जितने भी हमारे लफ्ज़ हैं, वर्णात्मक नाम हैं, ये हमारे जरिये, साधन या उपाय हैं और वह सच्चा नाम हमारा ध्येय और लक्ष्य है। इन लफ्ज़ों के प्यार में

---

१. हुजूर महाराज बाबा सावनसिंहजी।

उलझ कर हमें कोई कौम, मज़हब और मुल्क के झगड़े खड़े नहीं करना है, बल्कि इन लफ्जों के जरिये उस सच्चे शब्द और सच्चे नाम की खोज करनी है। लेकिन हम दुनिया में क्या देखते हैं ? कोई परमात्मा को वाहिगुरु कहकर याद करता है, वह अपने आप को सिख समझना शुरू कर देता है। कोई अल्लाह कहकर पुकारता है, वह मुसलमान बन जाता है। कोई राम कहता है, वह हिन्दू कहलाना शुरू कर देता है। और हमारा एक दूसरे से मिलना-जुलना भी मुश्किल हो जाता है। हम इस बारे में कभी नहीं सोचते कि हमारे लफ्ज हमारे ध्यान या खयाल को किस ओर ले जाते हैं। अगर आज हमारा खयाल उस सच्चे शब्द से जुड जाता है तो दुनिया के सब झगड़े खत्म हो जाते हैं। यह पहले अर्ज किया जा चुका है कि हमारी न कोई कौम है, न मजहब है और न कोई मुल्क। ये झगड़े तब तक ही हैं जब तक कि हम सच्चे शब्द को भूल बैठे हैं और इन लफ्जों से प्यार लगाये बैठे हैं। हरएक महात्मा हमें इन लफ्जों के भ्रमों से निकाल कर उस सच्चे शब्द से जोड़ने के लिये आता है। जिस प्रकार माता प्यार में आकर अपने बेटे को कई लफ्जों से याद करती है, लेकिन माता का जो बेटे से रिश्ता है वह कोई लफ्जों का रिश्ता नहीं, बल्कि प्यार का रिश्ता है। ये लफ्ज तो सिर्फ माता के प्यार को प्रकट करते हैं, उसका वर्णन करते हैं। वह प्यार तो अपने आप में कोई और चीज है और ये लफ्ज कोई और चीज हैं। इसी प्रकार मालिक के भक्तों और प्यारों ने कई लफ्जों के द्वारा उस परमात्मा को याद किया है। असल में उस मालिक का कोई नाम नहीं है। जैसा कि कहा गया है—

"बनामे ऊ के ऊ नामे नदारद,
बहर नामे के ख्वानी सर बर आरद"

अर्थात् उसके नाम से शुरू करता हूँ जिसका कि कोई नाम नहीं; जिस नाम से बुलाओ, वह जवाब देता है। ये लफ्ज तो

मालिक के भक्तों और प्रेमियों के प्यार को प्रकट करते हैं। ये सब लफ्ज वर्णात्मक शब्द हैं। जो आत्मा का परमात्मा से प्यार है, वह सच्चा शब्द और सच्चा नाम है। उस सच्चे शब्द और सच्चे नाम का कोई इतिहास नहीं बतलाया जा सकता और न ही उसका कोई समय निश्चित किया जा सकता है, क्योंकि उस सच्चे शब्द ने दुनिया की रचना की है, उसके आधार पर हमारे खण्ड-ब्रह्माण्ड चल रहे हैं और हम सब को उसका ही आसरा है। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"उतपति परलै सबदे होवे ॥
सबदे ही फिर ओपत होवे ॥"

शब्द ने ही इस दुनिया की रचना की है। और जिस दिन परमात्मा उस शब्द की ताकत को इस दुनिया से खींच लेगा, यहाँ प्रलय और महाप्रलय हो जायेगा। यह जितनी भी दुनिया की रचना है, सब पांच तत्वों की बनी हुई है। ये हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। हरएक वस्तु में कोई न कोई तत्त्व मौजूद है। ये पाँचों ही तत्त्व एक दूसरे के दुश्मन हैं, लेकिन शब्द के कारण और शब्द के आसरे ही ये एक दूसरे का साथ दे रहे हैं। जिस दिन परमात्मा उस शब्द की ताकत को दुनिया से निकाल लेता है, पृथ्वी पानी में घुल जाती है, पानी को अग्नि खुश्क कर देती है, अग्नि को हवा उड़ा ले जाती है और हवा को आकाश खा जाता है और इस सारी दुनिया में धुन्धुकार छा जाता है। उदाहरण के तौर पर, हमारा यह शरीर पाँच तत्त्वों का पुतला है। जब तक उस शब्द की किरण हमारे अन्दर है हम दुनिया में किस तरह दौड़ते फिरते हैं। जिस दिन उस शब्द की किरण या आत्मा को परमात्मा शरीर से निकाल लेता है, हमारा सारा शरीर यानी ये पाँचों तत्त्व बेकार हो जाते हैं, ये पाँच तत्त्व पांच तत्त्वों में ही जाकर मिल जाते हैं और हमारी हस्ती खत्म हो जाती है। इसी

तरह महात्मा समझाते हैं कि उस शब्द के ही आधार पर सारी दुनिया चल रही है। गुरु अर्जुनदेवजी फरमाते हैं—

"नाम के धारे सगले जंत। नाम के धारे खंड ब्रहमंड ॥
नाम के धारे आगास पाताल। नाम के धारे सगल आकार॥"

इसी प्रकार गुरु अमरदासजी लिखते हैं, "नामै ही ते सभ किछु होआ।" अर्थात् जो कुछ भी हम दुनिया में देखते हैं सब नाम ने ही पैदा किया है। बाइबिल में सेंट जॉन का कथन है, "आदि में शब्द था और शब्द परमेश्वर के साथ था। यही आदि में परमेश्वर के साथ था। सब कुछ उसी के द्वारा उत्पन्न हुआ और जो कुछ उत्पन्न हुआ है उसमें से कोई भी वस्तु उसके बिना उत्पन्न नहीं हुई।" (जॉन १: १, २, ३)

ऋषि मुनि भी वेदों-शास्त्रों में यही उल्लेख करते हैं कि परमात्मा ने आकाशवाणी के द्वारा संसार की रचना की है। कुरान शरीफ में आया है कि उस क़लमे या कुन के ज़रिये मालिक ने दुनिया पैदा की। चीन के दर्शनशास्त्रों में भी यही उल्लेख है कि 'टाओ' ने दुनिया की रचना की है। गुरु नानकसाहिब समझाते हैं—

"सबदे धरती सबदे आकास। सबदे सबद भया परगास ॥
सगली सृसटि सबद के पाछे। नानक सबद घटे घट आछे ॥"

शम्स तब्रेज़ भी कहते हैं—

"आलम अज़ सौते ईं ज़हूर गरिफ्त,
अज़ हज़ूरश बिसाते नूर गरिफ्त।"[1]

हम खुद ही अनुमान लगा सकते हैं कि जिस ताकत ने दुनिया की रचना की हो उसका क्या इतिहास हो सकता है, क्या समय और

---

१. इस आवाज से आलम या संसार प्रकट हुआ, इसकी उपस्थिति से नूर की चादर प्राप्त हुई।

क्या अवधि तय की जा सकती है ! उसका समय और उसकी अवधि तो कोई हो ही नहीं सकती ।

हमें मुक्ति प्राप्त करने के लिए उस सच्चे शब्द की जरूरत है । वह सच्चा शब्द परमात्मा ने सब मनुष्यों के अन्दर रखा है । जब तक हम अपने शरीर के अन्दर उसकी खोज करके अपने खयाल को उस सच्चे शब्द से नहीं जोड़ते, अपने आपको उसमें जज्ब और लवलीन नहीं करते, हम कभी भी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते । गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"सच्चे सबद सच्ची पत होई । बिन नामे मुकति न पावे कोई ।।"

तीसरी पादशाही गुरु अमरदासजी फरमाते हैं—

"सबद न जानहि से अन्हे बोले, से कित आए संसारा ।।"

और

"बिन सबदै अंतर आन्हेरा । न वस्तु लहै न चूकै फेरा ।।"

जब तक हम उस शब्द की खोज नहीं करते, हमारे अन्दर से अज्ञान का अँधेरा कभी दूर नहीं हो सकता, न परमात्मा ही मिल सकता है और न कभी देह के बन्धनों से छुटकारा प्राप्त हो सकता है ।

"शबद मरे सोई जन पूरा । सतगुरु आख सुनाए सूरा ।।"

हजरत ईसा भी बाइबिल में कहते हैं "अगर तुम मेरे शब्द से जुड़े रहते हो तो मेरे सच्चे शिष्य हो; तभी तुम सच को जान सकोगे और वह सच तुम्हें आजाद कर देगा ।" (जॉन, ८: ३१, ३२) आगे फिर कहते हैं कि उस नाम की कमाई के बिना तो मालिक की और कोई भक्ति ही नहीं है । बाइबिल में कथन है, "परमात्मा एक चेतन सत्ता (शब्द) है और जो उसे पूजना चाहें

उन्हें चाहिये कि सच्चे और चेतन होकर उसे पूजें ।" (जॉन ४:२४) कबीर साहिब समझाते हैं—

"जब ही नाम हिरदे धरयो, भयो पाप को नास ।
जैसे चिनगी आग की, पड़ी पुरानी घास ॥"

जिस समय हमारे हृदय में नाम प्रकट हो जाता है, हमारे सब कर्मों का सिलसिला खत्म हो जाता है, जिनकी वजह से हम देह के बन्धनों में फँसे हुए हैं । जिस तरह एक सूखे घास का ढेर चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, आग की एक चिनगारी उस पूरे ढेर को जलाकर खाक कर सकती है, इसी तरह हम संसारी और मनमुख पुरुषों के कितने भी बुरे और खोटे पाप क्यों न हों, यह नाम की कमाई हमारे सब कर्मों का हिसाब खत्म कर देती है । दरिया साहिब फरमाते हैं—

"दरिया सुमिरै राम को, करम भरम सब खोय ।
पूरा गुरु सिर पर तपे, विघन न लागे कोय ॥"

इसी प्रकार गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"आन आन समिधा बहु कीनी पल बैसंतर भसम करीजै ।
महा उग्र पाप साकत नर कीन्हे मिल साधू लूकी दीजै ॥"

स्वामीजी कहते हैं—

"शब्द करम की रेख कटावे । शब्द शबद से जाय मिलावे ॥"

हजरत ईसा मसीह भी बाइबिल में कहते हैं—"जो शब्द मैंने तुमसे कहा है उसके द्वारा तुम अब शुद्ध हो गये हो" (जॉन, १५:३) । अर्थात् मैंने जो सच्चा शब्द तुम्हें दिया है उसने तुम्हारे सब पाप धो डाले हैं । कबीर साहिब तो नाम की यहाँ तक महिमा करते हैं—

"नाम जपत कोढ़ी भला, चुइ चुइ पड़े जिस चाम ।
कंचन देह किस काम की, जा मुख नाहीं नाम ।।"

कि अगर कोई कोढ़ी भी है जिसके शरीर से पानी बह रहा है, पर उसका खयाल अन्दर शब्द या नाम के साथ जुड़ा हुआ है, तो वह उस व्यक्ति से कहीं अच्छा है जो कि सब दुनिया के ऐशो-आराम लेकर बैठा है, मगर परमात्मा को भूले हुए है ।

जिस सच्चे नाम की महात्मा इतनी महिमा करते हैं, वह नाम कहीं बाहर नहीं है, हमारे शरीर के अन्दर ही है । गुरु अमरदास साहिब समझाते हैं—

"सरीरों भालण को बाहर जाए ।
नाम न लहे बहुत वेगार दुख पाए ।।"

शरीर के बाहर जो उस नाम को ढूंढने की कोशिश करते हैं वे बेगारियों की तरह अपने कीमती समय को खराब करते हैं । बेगारी सारा दिन मेहनत करता है, टूट-टूटकर मरता है, अपना खून पसीना एक करता है, लेकिन आखिर में उसके पल्ले कुछ भी नहीं पड़ता । अगर कोई चीज हमारे घर के अन्दर है तो बाहर खोजने से वह कैसे मिल सकती है ?

सुमिरन और ध्यान

हमारा रूहानी सफर पैरों के तलवों से लेकर सिर की चोटी तक है और इस सफर की दो मंजिलें हैं । एक आँखों तक है और दूसरी आँखों के ऊपर । हमारे शरीर के अन्दर आत्मा और मन का जो केंद्र या स्थान है, वह हमारी आँखों के पीछे है; जिसका मुसल-मान फकीरों ने नुक्ताए-सुवैदा कहकर वर्णन किया है, हज़रत ईसा ने जिसे घर का दरवाजा कहकर समझाया है । ऋषियों-मुनियों ने उसका वर्णन शिव-नेत्र और दिव्य-चक्षु कहकर किया है । गुरु

नानक साहिब उसे तिल या तीसरा तिल कहते हैं। अगर हम कोई बात भूल जायें और उसे याद करना चाहें तो हमारा हाथ अपने आप ही स्वाभाविक तौर पर माथे पर आकर टिक जाता है। कभी भी हम किसी भूली हुई चीज़ को याद करने के लिये लातों-पैरों पर हाथ नहीं टिकाते। आँखों के बीच व पीछे के स्थान का हमारे सोचने-विचारने के साथ बड़ा गहरा सम्बन्ध है। हरएक मनुष्य का खयाल यहाँ से उतर कर नौ द्वारों के ज़रिये तमाम दुनिया के अन्दर फैल रहा है। गुरु रामदास साहिब फरमाते हैं--

"मन खिन खिन भरम भरम बहु धावे। तिल घर नहीं वासा पाइए।।"

और

"गुर अंकुस सबद दारू सिर धारियो, घर मंदर आन बसाइऐ।।"

कि हमारा खयाल तीसरे तिल से उतर कर पल-पल सारी दुनिया में फैलता जाता है और मन एक क्षण के लिये भी आँखों के पीछे नहीं ठहरता। जब तक यह आँखों के पीछे नहीं ठहरता तब तक यह अपने घर त्रिकुटी में जाकर नहीं समा सकता।

हमारे शरीर में ये नौ दरवाजे हैं—दो आँखें, दो कान के छिद्र, दो नाक के छिद्र, मुँह और नीचे दो इन्द्रियों के छिद्र। इन नौ द्वारों के ज़रिये हमारा खयाल सारी दुनिया में फैलता है। कितनी ही अँधेरी कोठरी के अन्दर जाकर क्यों न बैठ जायें, बाहर कितने ही ताले क्यों न लगे हों, हमारा मन वहाँ नहीं होगा, बाहर सारी दुनिया में फैला हुआ होगा। हमारे मन को दलीलें करने की और सोचने की जो आदत पड़ी हुई है, इसको महात्मा सुमिरन करना कहते हैं। सुमिरन करने की हरएक मनुष्य की कुदरती आदत है और जिसके बारे में हम सुमिरन करते हैं उसकी शक्ल भी हमारी आँखों के सामने आकर खड़ी हो जाती है। अगर बच्चों का सुमिरन करते हैं अर्थात् अगर उनकी याद आती है, तो बच्चों की शक्लें आँखों के आगे फिरनी शुरू हो जाती हैं। अगर घर के कारोबार के बारे में खयाल आता है तो घर के कारो-

बार आँखों के आगे फिरना शुरू हो जाते हैं। इसको महात्मा ध्यान करना कहते हैं। जिसका हम सुमिरन करते हैं उसका ही ध्यान भी करना शुरू कर देते हैं। जिन-जिन शक्लों और पदार्थों का सुमिरन और ध्यान पकता जाता है, उनके साथ हमारा मोह और प्यार भी पैदा हो जाता है। सुमिरन और ध्यान के द्वारा हम उनके साथ इतना लगाव और प्यार पैदा कर लेते हैं, मन का उनके साथ इतना लगाव और मोह हो जाता है कि रात को हमें सपने भी उनके ही आने शुरू हो जाते हैं। मौत के वक्त उनका ही खयाल हमारी आँखों के आगे आकर खड़ा हो जाता है और मौत के समय जिस ओर भी हमारा खयाल होता है उसी रौ में हम बहना शुरू कर देते हैं। 'जहाँ आसा तहाँ बासा', मौत के बाद उस मोह के बँधे हुए हम वापस वहीं जाकर जन्म लेते हैं। संसार की शक्लों और पदार्थों का प्यार वापस हमें संसार में ही ले आता।

महात्मा समझाते हैं कि सुमिरन और ध्यान की हमें स्वाभाविक आदत पड़ी हुई है। इसलिए, इस स्वाभाविक आदत से फायदा उठाओ और दुनिया के सुमिरन और ध्यान के स्थान पर मालिक के नाम का सुमिरन और ध्यान करो, क्योंकि सुमिरन सुमिरन को काटेगा और ध्यान ध्यान को निकालेगा। पानी की मारी हुई खेती पानी से ही हरी-भरी होती है। दुनिया की नाशवान चीज़ों का सुमिरन करके हम उनसे मोह और प्यार किये बैठे हैं। उनमें से कोई भी चीज़ हमारा साथ देनेवाली नहीं है। उनका मोह और प्यार हमें बार-बार देह के बन्धनों की ओर ले आता है। हमें चाहिए कि उस मालिक के नाम का सुमिरन और ध्यान करें जो कभी फना नहीं होता, जिसका हमारी आत्मा अंश है और जिसमें जाकर वह समाना चाहती है। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"निहचल एक आप अबिनासी। सो निहचल जो तिसे धिआइन्दा॥"

वह परमात्मा निश्चल है। वह कभी जन्म और मरण के दुःखों में नहीं आता। जो उसका ध्यान करते हैं, उससे प्यार करते हैं,

उसका सुमिरन करते हैं, वे भी निश्चल हो जाते हैं। उनका भी जन्म और मरण के दुःखों से छुटकारा हो जाता है।

हमें आँखों के पीछे अपना खयाल जमाकर परमात्मा के नाम का सुमिरन करके अपने फैले हुए खयाल को वापस इकट्ठा करके इसी केन्द्र पर एकाग्र करना है। यह इतना सरल और आसान तरीका है कि छोटे बच्चे से लेकर बूढ़े तक इसे आसानी से कर सकते हैं, क्योंकि सुमिरन करने की आदत तो स्वाभाविक ही सबको पड़ी हुई है। हमें दुनिया का सुमिरन करने की इस आदत का फायदा उठाकर उस मालिक के नाम के सुमिरन में मन को लगाना है। जब सुमिरन के द्वारा हमारा खयाल उलटकर आँखों की तरफ इकट्ठा होता है तो मन उस जगह टिकता और ठहरता नहीं है, क्योंकि उसे बार-बार नौ द्वारों के ज़रिये बाहर दौड़ने की आदत पड़ी हुई है। अँधेरे और शून्य में मन को खड़ा करना बड़ा मुश्किल हो जाता है। जब तक हम मन को किसी के स्वरूप के ध्यान का आधार नहीं देते तब तक उसे वहाँ ठहरानेवाली कोई चीज़ नहीं मिलती और हमारे खयाल के लिए वहाँ ठहरना बहुत मुश्किल हो जाता है। इसलिए महात्मा समझाते हैं कि मन को वहां खड़ा करने के लिए किसी-न-किसी के स्वरूप के ध्यान का आधार देना बड़ा जरूरी है।

ध्यान किसके स्वरूप का करना चाहिए ? यह बड़ी सोच और विचार करने योग्य बात है, क्योंकि जिसके भी स्वरूप का ध्यान करेंगे, स्वाभाविक ही हमारा उसके साथ मोह और प्यार पैदा हो जायेगा और जहाँ वह जायेगा, हम भी उसके मोह और प्यार में बँधे हुए वहीं जायेंगे। इस बात पर विचार और गौर करने के लिए हम सारी दुनिया को अपनी आँखों के आगे रखकर अच्छी तरह परख कर सोचते हैं कि कौन-सी चीज़ हमारे ध्यान के योग्य हो सकती है। जितनी भी दुनिया की चीज़ें बनी हुई हैं यह सब पाँच तत्वों की बनी हुई हैं। हरएक चीज़ के अन्दर कोई-न-कोई तत्व

मौजूद है। मनुष्य के अन्दर पाँचों तत्व मौजूद हैं, इसलिए महात्मा हमें रचना का सिरमौर या अशरफ-उल-मख्लूकात और पाँच तत्वों का पुतला कहते हैं।

तत्वों की दृष्टि से हम रचना को पाँच श्रेणियों में बाँट सकते हैं। पहली श्रेणी वह है जिसमें पानी का तत्व प्रधान है। इसमें फल, फूल, सब्जी और पेड़-पौधे आते हैं। अगर हम पाँच तत्वों के पुतले होकर पेड़ों, पौधों आदि का ध्यान करेंगे तो हम उन्नति नहीं कर सकते, क्योंकि उनका ध्यान हमें उन्हीं के जामे में यानी पेड़ों, पौधों आदि के जामे में ले जायेगा। अतएव, पूरा वनस्पति जगत हमारे ध्यान के योग्य नहीं है। दूसरी श्रेणी कीड़े-मकोड़े, साँप, बिच्छू वगैरह की है जिनके अन्दर दो तत्व—पृथ्वी और अग्नि—मौजूद हैं। ये भी हमारे ध्यान के काबिल नहीं हो सकते। तीसरी श्रेणी पक्षियों की है जिनमें तीन तत्व हैं, हवा, पानी और अग्नि। अगर हम पाँच तत्वों वाले मनुष्य होकर गरुड, मोर, चिड़ियों आदि का ध्यान करेंगे तो हम इन पक्षियों के जामे में आ जायेंगे। हमारा उद्देश्य तो मनुष्य के जामे से भी ऊपर जाने का है। इसलिए यह श्रेणी भी हमारे ध्यान के योग्य नहीं है। चौथी श्रेणी चौपायों, जानवरों की है, जिनमें बुद्धि या आकाश नहीं है, बाकी चार तत्व मौजूद हैं। अतएव गाय, बैल, घोड़े वगैरह भी हमारे ध्यान के काबिल नहीं। पाँचवीं श्रेणी खुद मनुष्य की है और हर मनुष्य में पाँचों ही तत्व मौजूद हैं। इसलिए स्वाभाविक तौर पर मन में यह विचार आता है कि मनुष्य मनुष्य का ध्यान धरे तो क्यों धरे ? खासकर आजकल के जमाने में जब हमारे सबके अधिकार समान हैं।

अब मनुष्य मनुष्य का ध्यान नहीं धरता, देवी-देवता किसी ने आज तक देखे नहीं और मालिक के स्वरूप का पता नहीं। यहाँ आकर बहुत-से लोग खुदा की हस्ती को ही अस्वीकार कर बैठते हैं। और बाकी सब भी इस उलझन में फँस जाते हैं कि अब कौन-सी चीज़ हमारे ध्यान के योग्य हो सकती है। महात्मा एक बहुत अच्छी

मिसाल देकर समझाते हैं कि अगर एक कमरे में बहुत से रेडियो रख दें, जिनका सम्बन्ध किसी बैटरी या बिजली से न हो तो हम कभी किसी देश की खबरें नहीं सुन सकते। लेकिन उनका सम्बन्ध अगर किसी बैटरी या बिजली से हो जाए तो हम जिस देश की चाहें खबरें सुन सकते हैं। इसी प्रकार हमें उन मालिक के भक्तों और प्यारों की खोज करनी है जिनका सम्बन्ध या तार उसके साथ जुड़ा हुआ है। वे अपनी भक्ति और प्यार के बँधे हुए वापस जाकर उसी परमात्मा से मिल जाते हैं, इसलिए हम भी उनके स्वरूप का ध्यान करके, उनके साथ प्यार लगाकर वापस जाकर उसी पर-मात्मा के अन्दर समा जायेंगे। गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"गुरु की मूरत मन में धिआन।"

और

"अकाल मूरत है साध संतन की, ठाहर नीकी धिआन को॥"

अर्थात् सत्गुरु के तसव्वुर या ध्यान को हमेशा मन में रखो। यही स्वामीजी महाराज का भी उपदेश है—

"गुरु का ध्यान कर प्यारे। बिना इसके नहीं छुटना।"

ईसा-मसीह भी इसी ओर इशारा करते हैं जब वे कहते हैं कि मैंने उस परमात्मा को देखा है, तुमने मुझे देखा है, इसलिए तुमने भी उस परमात्मा को देखा है, "और जो मुझे देखता है वह मेरे भेजनेवाले को देखता है।" (जॉन १२:२५)

तात्पर्य यही है कि सत्गुरु के स्वरूप के ध्यान के द्वारा ही हम वापस जाकर उस परमात्मा में समायेंगे। ध्यान के द्वारा हमारे खयाल को आँखों के पीछे ठहरने की आदत पड़ जाती है। ध्यान हमें अपने सत्गुरु का करना है जिन्होंने मालिक की भक्ति का तरीका और रास्ता हमें बताया है।

जब ध्यान के द्वारा हमारा खयाल एकाग्र हो जाता है तब हमें अपने आप पता लग जाता है कि आँखों के पीछे एक बहुत मीठी और सुरीली आवाज आ रही है। यह आवाज मालिक की दरगाह से उठ रही है और यह हरएक मनुष्य के अन्दर है। यहां किसी कौम, मज़हब या मुल्क का सवाल नहीं है, चाहे हम हिन्दू होकर अन्दर जायें या सिक्ख, मुसलमान या ईसाई धर्म में होकर जायें। जो भी भाग्यशाली अपने खयाल को आँखों के पीछे एकाग्र करता है, उसका खयाल उस आवाज के साथ जुड़ जाता है। इस अमल या क्रिया को महात्मा जीते जी मरना कहते हैं, क्योंकि खयाल को आंखों के पीछे एकाग्र करके उस मीठी और सुरीली आवाज को सुनने से आत्मा और मन नौ द्वारों से आजाद हो जाते हैं और इनका सम्बन्ध इस दुनिया से बिल्कुल टूट जाता है। दुनिया के सब दुःख भूलकर मनुष्य अपने अन्दर शब्द की स्थायी खुशी का अनुभव करने लगता है। कबीर साहिब इस बारे में लिखते हैं—"जिस मरने से जग डरे, मेरे मन आनन्द।" गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"नानक जीवतिआँ मर रहिए। ऐसा जोग कमाइए॥"

बाइबिल में सेण्ट पॉल भी कहते हैं, "मैं प्रतिदिन मरता हूँ।"

अहले इस्लाम की हदीस भी कहती है, "मौतूआ कबलन्ता मौतू" अर्थात् मौत से पहले मरो।

दादू साहिब जो कि एक प्रसिद्ध महात्मा हुए हैं अपनी वाणी में लिखते हैं—

"जीवत माटी हो रहो, साईं सनमुख होय।
दादू पहले मर रहो, पीछे मरे सब कोय॥"

तीसरी पातशाही गुरु अमरदासजी फरमाते हैं—

"सतगुरु सेवे तां मल जाए।
जीवत मरे हरि सिम्रों चित लाए॥"

दरिया साहब फरमाते हैं—

"दरिया गुरु गरवा मिला, करम किया सब रद्द।
झूठा भरम छुड़ाय कर, पकड़ाया सत शब्द॥"

इसी प्रकार गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"मिटे अँधेरा अज्ञानता भाई, कमल होवे परगास।
गुरु बचन सुख ऊपजे भाई, सब फल सतिगुर पास॥"

उस मीठी और सुरीली आवाज को ही, जो कि आंखों के पीछे आ रही है, महात्मा शब्द या नाम कहकर पुकारते हैं। ये जितने भी हमारे मज़हब हैं, सबके रीति-रिवाज या शरीयत अलग-अलग हैं, परन्तु जो वास्तविक आध्यात्मिकता है, असलियत है, हकीकत है, रूहानियत की बुनियाद और सच्चाई का मूल है, वह हर धर्म या मज़हब की तह में एक ही है। उस रूहानियत को भिन्न-भिन्न महात्माओं ने भिन्न-भिन्न लफ्जों के द्वारा समझाने की कोशिश की है, लेकिन मतलब सबका उसी रूहानियत से है, उसी नाम या शब्द से है जो हरएक मनुष्य के अन्दर मौजूद है। हमें बाहरी लफ्जों की भिन्नता में नहीं उलझना चाहिये। हमें तो अपने शरीर के अन्दर उस केन्द्र पर अपने खयाल को एकाग्र करना है, जहाँ वह शब्द दिन-रात धुनकारें दे रहा हैं। गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"नौ दर ठाके धावत रहाए, दसवें निज घर वासा पाए।
ओथे अनहद सबद बजे दिन राती, गुरु मती सबद सुनावणिआ॥"

अर्थात् जब हम अपने शरीर के नौ द्वारों से खयाल को निकाल-

कर आँखों के पीछे एकाग्र करते हैं तो हम अपने असली घर के दरवाजे पर आ जाते हैं। हमारा असली घर सचखंड है जहाँ परमात्मा का निवास है। उसका दरवाजा आँखों के पीछे तीसरा तिल है। घर के उस दरवाजे की निशानी का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उस जगह अनहद शब्द दिन-रात धुनकारें दे रहा है। जब तक उस घर के दरवाजे पर खयाल को इक़ठ्ठा करके शब्द को नहीं पकड़ते, तब तक हमारा मुक्ति प्राप्त करने का सवाल ही पैदा नहीं होता। हज़रत ईसा भी इसी ओर इशारा करते हैं जब वे कहते हैं, "ढूंढो और तुम्हें मिलेगा, खटखटाओ और वह तुम्हारे लिये खोला जायेगा।" (मैथ्यू ७:७.)

आन्तरिक मार्ग

अगर हमें अपने घर के अन्दर जाना है तो सबसे पहले घर के दरवाजे की तलाश करनी पड़ती है। निज-घर का वह दरवाजा आंखों के पीछे तीसरी आंख, एक आँख या तीसरा तिल है। उसी को खोलने के लिये हम उसको खटखटाते हैं अर्थात् बार-बार सुमिरन और ध्यान के द्वारा अपने फैले हुए खयाल को आँखों के पीछे उलटकर इकट्ठा करते हैं। जब बार-बार खटखटाने से अर्थात् सुमिरन और ध्यान से हमारा खयाल इकट्ठा हो जाता है, तब उस घर का दरवाजा खुल जाता है। फिर हमें घर जाने का रास्ता मिलता है। जब हम अपने खयाल को वहाँ जाकर शब्द के साथ जोड़ते हैं तो वह शब्द का मार्ग खुल जाता है। उसके द्वारा हम वापिस जाकर परमात्मा को पा सकते हैं। तुलसी साहिब समझाते हैं—

"कुदरती काबे की तू महराब में सुन गौर से,
आ रही धुर से सदा तेरे बुलाने के लिये॥"

मुसलमानों का खयाल है कि हज अथवा काबे की यात्रा करने से हम मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। तुलसी साहिब फरमाते हैं कि जो

असली काबा है वह हमारा शरीर है। पैरों के तलवों से हमारा हज शुरू होता है और सिर की चोटी पर जाकर खत्म होता है। इस हज की दो मंजिलें हैं। एक आँखों तक और दूसरी आँखों से ऊपर। मौलवी हमेशा मेहराब के अन्दर खड़ा होकर बाँग देता है। हमारे माथे की बनावट भी मेहराब की तरह है। जो मालिक की दरगाह की ओर से कुदरती कलमा आ रहा है, वह इस मेहराब यानी माथे के अन्दर आ रहा है। जब हम उस आवाज या कलमे को पकड़ते हैं, तो हम उसके पीछे-पीछे चलकर अपनी मंज़िले-मकसूद पर पहुँच जाते हैं। गुरु अमरदासजी फरमाते हैं—

"इस काइआ अंदर वसतु अनेका, गुरमुख साच मिले ताँ वेखाँ ॥
नौ दरवाज़े दसवें मुकता, अनहद सबद वजावणिआँ ॥

हमारा यह शरीर सिर्फ हड्डियों और माँस का ही नहीं बना हुआ है और न सिर्फ पाँच-छः फुट लम्बा मिट्टी का पुतला ही है। परमात्मा ने इसके अन्दर अनगिनत सामान अर्थात् खजाने रखे हैं। बल्कि वह परमात्मा खुद भी इसके अन्दर बैठा हुआ है। जब तक कोई सच्चा सतगुरु नहीं मिलता तब तक हम शरीर में उस परमात्मा को देखने और अन्दर खोज करने के तरीके का पता नहीं लगा सकते। आप समझाते हैं कि शरीर के दो हिस्से हैं, एक आँखों से नीचे और दूसरा आँखों से ऊपर। आँखों के नीचे नौ द्वारों में सिर्फ इन्द्रियों के भोग और विषयों-विकारों के स्वाद हैं। जब तक हमारा खयाल आंखों से नीचे-नीचे है, हम मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते, क्योंकि मुक्ति का दरवाजा आंखों के पीछे है। उसकी यही पहचान है कि उस जगह अनहद शब्द धुनकारें दे रहा है। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"गुरु सबद मिले से बिछड़े नाहीं, सहजे सच समावणिआँ।"

जब हम सतगुरु के ज़रिये शब्द को पकड़ लेते हैं तब शब्द फिर

हमें छोड़ता नहीं, अपने साथ लेकर परमात्मा में ही समा जाता है। हमको उस शब्द के जरिये अपने अन्दर अपने घर का रुख या दिशा स्थिर करना है और शब्द के प्रकाश के द्वारा अपने घर का रास्ता देखना है। हमारी आत्मा की जो देखने की शक्ति है उसे महात्मा निरत कहते हैं और जो सुनने की शक्ति है उसे सुरत कहते हैं। सुरत के द्वारा शब्द की आवाज को सुनना है और निरत के द्वारा उसके प्रकाश को देखना है। उदाहरण के तौर पर, अगर हम अपने घर से शाम को सैर करते हुए कहीं दूर निकल जाते हैं, रात का अँधेरा सिर पर छा जाता है, हाथ को हाथ नहीं सूझता, अपने घर के रास्ते का कुछ पता नहीं लगता और न घर की दिशा का ही कुछ अन्दाज रहता है, तब हम वापस अपने घर पहुँचने के लिए उस अँधेरे में चुपचाप खड़े होकर बड़े गौर से किसी न किसी आवाज को सुनने की कोशिश करते हैं जो कि हमारे घर की ओर से आ रही हो। कहीं रेडियो की आवाज हो या कोई कुत्ता भौंकता हो या ऐसी ही और कोई आवाज आती हुई सुनाई दे, तो हम उस आवाज को सुनकर अपने घर की दिशा स्थिर कर लेते हैं कि हमारा घर आगे की तरफ है या पीछे की ओर है अथवा दाईं या बाईं तरफ है। दिशा का पता लग जाने पर भी रास्ते में अँधेरा है, ऊँची-नीची जमीन है, पानी या झाड़ियाँ वगैरह हैं, इसलिये अगर हमारे हाथ में कोई टार्च या लालटेन हो तो हम उसके प्रकाश के द्वारा ऊँची-नीची जमीन देखते हुए, काँटों, झाड़ियों वगैरह से बचते हुए अपना रास्ता ढूंढकर सही-सलामत वापस अपने घर पहुँच जाते हैं। इसी प्रकार महात्मा उपदेश देते हैं कि हमारे हरएक के अन्दर परमात्मा ने हमारे लिये वह आवाज़ भी रखी है और वह रोशनी भी रखी है। हमें उस आवाज को सुनकर अपने घर की दिशा स्थिर करनी है और रोशनी के द्वारा अपना रूहानी सफर तय करना है। कबीर साहिब भी उसकी ओर इशारा करते हैं—"दीवा बले अगम का, बिन बाती बिन तेल"। वह अगम की जोत हमारे सबके अन्दर

बगैर बत्ती और तेल के जल रही है। पलटू साहिब भी अपना यही अनुभव समझाते हैं—

"उलटा कुआँ गगन में तिसमें जरै चिराग।
तिसमें जरै चिराग बिना रोगन बिन बाती।
छः रुत बारह मास रहत जरता दिन राती॥"

हमारे सिर के ऊपर के हिस्से का आप उलटा कुआँ कहकर वर्णन करते हैं। कुएँ का मुँह ऊपर और पेंदा नीचे होता है। हमारे सिर का पेंदा ऊपर और मुँह नीचे की ओर है अर्थात् उसकी बनावट कुएँ से उलटी है। आप फरमाते हैं कि जब हम नौ द्वारों से खयाल को निकाल कर आँखों के पीछे इकट्ठा करेंगे तो हम उस उलटे कुएँ के अन्दर आ जायेंगे। उस जगह हरएक के अन्दर एक जोत जल रही है। उस जोत को जलने के लिये न तो किसी बत्ती की जरूरत है और न ही किसी तेल की। बाहर हम जितनी जोतें जलाते हैं उनको बत्ती और तेल की ज़रूरत होती है। अगर बत्ती खत्म हो जाये या तेल समाप्त हो जाये तो वे बुझ जाती हैं। परन्तु जिस जोत का पलटू साहिब वर्णन करते हैं वह जोत चौबीस घण्टे हमारे सबके अन्दर जल रही है। छहों ऋतु, बारहों महीने और दिन-रात यह जोत हर वक्त हर मनुष्य के अन्दर जलती रहती है। यही स्वामीजी महाराज फरमाते हैं—

"बसो तुम आय नैनन में, सिमटकर एक यहाँ होना।
दुई यहां दूर हो जाये, दृष्टि जोत में धरना॥"

जिस समय हम नौ द्वारों से खयाल को निकाल कर आँखों के पीछे एगाग्र करते हैं, तो हम द्वैत से एकता में आ जाते हैं। जब तक हमारी तवज्जह या हमारा ध्यान दोनों आँखों के द्वारा बाहर की ओर फैल रहा है, हम द्वैत में बैठे हैं। जब खयाल को समेटकर आँखों के पीछे इकट्ठा करते हैं, तो एकता में आ जाते हैं। फिर

हमें इस केन्द्र पर उस जोत के दर्शन होते हैं। हजरत ईसा ने बाइबिल में इसी का जिक्र किया है, "शरीर की ज्योति आँख है। इसलिये अगर तेरी आँख एक हो जाये तो तेरा सारा शरीर प्रकाश से भर जायेगा" (मेथ्यू ६:२२)। कि अगर तुम एक आँख वाले हो जाओगे अर्थात् दोनों आँखों के पीछे खयाल को इकट्ठा कर लोगे, तो तुम्हारा सारा शरीर नूर और प्रकाश से भर जायेगा। गुरु नानक साहिब भी यही उपदेश देते हैं—

"अंतर जोत निरंतर बानी सच्चे साहब सिओं लिव लाई।"

हरएक मनुष्य के अन्दर वह जोत जल रही है। उस जोत के अन्दर से एक बहुत मीठी और सुरीली आवाज निकल रही है। जो उस जोत के दर्शन करते हैं और उस वाणी की सुरीली आवाज को सुनते हैं, उनका दुनिया से मोह व प्यार उठ जाता है और मालिक से प्यार पैदा हो जाता है। हम सबको मालूम है कि जितने हमारे धार्मिक स्थान हैं, क्या गुरुद्वारा, क्या मस्जिद, क्या मन्दिर, क्या गिरजा, सबके अन्दर हम जोत जलाते हैं और घण्टे और शंख जैसी आवाज पैदा करते हैं। किसी गिरजे में चले जायें, वहाँ मोमबत्तियाँ जलाई जाती हैं और सबसे ऊपर घण्टा लटका रहता है जो प्रार्थना आदि शुरू होने से पहले बजाया जाता है। इसी तरह बौद्ध मन्दिरों में भी हमेशा जोत जलती रहती है, जिसे वे अखंड जोत कहते हैं और जिसे कभी बुझने नहीं देते। लेकिन जिस अखंड जोत का उल्लेख महात्मा बुद्ध ने किया है वह तो हमारे सबके अन्दर है। उनके मन्दिरों में बिगुल वग़ैरह भी बजाये जाते हैं। जैनियों और हिन्दुओं के मन्दिरों में भी जोत जलाई जाती हैं और घण्टे बजाये जाते हैं। इसी तरह गुरुद्वारों में भी जोत जलाई जाती है और शंख वगैरह बजाये जाते हैं। मुसलमान भी मज़ारों पर रात को चिराग़ जलाते हैं। मौलवी ऊँची-ऊँची आवाज़ से बाँग देता है या नक्कारा बजाता है। हमने कभी भी यह विचार नहीं किया होगा कि हरएक

धार्मिक स्थान पर जोत क्यों जलाई जाती है, घण्टा क्यों बजाया जाता है ? असल में ऋषियों-मुनियों, सन्तों-महात्माओं, पीरों-पैगम्बरों ने समझाया था कि हमारा शरीर ही सबसे बड़ा और असली गुरुद्वारा, मन्दिर, मस्जिद या गिरजा है और इस शरीर के अन्दर जोत जल रही है और शब्द की आवाज (जो शुरू-शुरू में घण्टे और शंख जैसी है) हो रही है। लेकिन हम दुनिया के जीव ऐसे मालिक के भक्तों के जाने के बाद उनकी असली शिक्षा को भूल गये और बाहरमुखी हो गये।

अन्दर उस शब्द की आवाज़ को सुनकर और प्रकाश को देखकर हमारा मन बिंध जाता है, वश में आ जाता है और वापस अपने ठिकाने पहुँच जाता है। आत्मा और मन की गाँठ खुल जाती है। गुरु अमरदास साहिब समझाते हैं—

"गुरु गिआन अंजन सच नेत्रीं पाइआ।
अन्तर चानन अगिआन अन्धेर गवाइआ॥
जोती जोत मिली मन मानिआ।
हर दर सोभा पावणिआँ॥"

जब सतगुरु के ज्ञान और अनुभव के अनुसार हम आँखों में शब्द रूपी सुरमा डालते हैं तो अज्ञानता का अँधेरा हमारे रास्ते से दूर हो जाता है तथा परमात्मा का नूर और प्रकाश नजर आना शुरू हो जाता है। हिन्दुस्तान में यह आम रिवाज है कि किसी को दिखाई कम देता है तो उसे सुरमे का प्रयोग करने की सलाह दी जाती है। आम धारणा है कि सुरमा डालने से नज़र फिर ठीक हो जाती है और अच्छी तरह दिखाई देना शुरू हो जाता है। गुरु अमरदासजी यह मिसाल देकर समझाते हैं कि हम दुनिया के जीव आँखों के होते हुए भी अन्धे हुए बैठे हैं, हमें अपने अन्दर कुछ भी नजर नहीं आता, अगर हम शब्द के सुरमे का प्रयोग करेंगे अर्थात् अपने खयाल को अन्दर समेटकर शब्द के साथ जोड़ेंगे, तो हमारा

अज्ञानता का अँधेरा दूर हो सकेगा और हमें अपने अन्दर प्रकाश दिखाई दे सकेगा, जिसे देखकर हमारा मन मान जायेगा अर्थात् वश में आ जायेगा। यह मन जो इन्द्रियों के भोगों का गुलाम बना बैठा है उस प्रकाश में लीन हो जायेगा और हर समय शब्द की आवाज को सुनकर व पकड़कर ब्रह्म अथवा त्रिकुटी में अपने ठिकाने पर पहुँच जायेगा। तब कहीं हमारी आत्मा मन के पंजे से आज़ाद होती है और तब जाकर हमारी 'जोती' (आत्मा) उस 'जोत' (परमात्मा) में मिलती है और मालिक की दरगाह में जाकर असली इज्जत और शोभा प्राप्त करती है। हज़रत ईसा भी बाइबिल में कहते हैं, "मैं इस जगत में न्याय के लिये आया ताकि जो नहीं देखते वे देखें और जो देखते हैं वे अन्धे हो जावें।" (जॉन ९:३९)। अर्थात् मैं इस दुनिया में इसलिये आया हूँ कि जो लोग आँखें होने के बावजूद अन्धे हैं और उस मालिक को नहीं देखते, मैं उनको इस दुनिया की शक्लों और पदार्थों की ओर से अन्धा कर दूँ और मालिक की ओर से आँखोंवाला अथवा सुजाखा कर दूँ। गुरु अमरदास साहिब यही समझाते हैं—

"जिन अन्तर सबद आप पछानहि गति मिति तिनही पाई ॥"

जो अन्दर उस शब्द को पकड़कर अपने आपको पहचानने के योग्य बनते हैं असली गति और मालिक से मिलने का रास्ता उन्हीं को प्राप्त होता है। फिर आप उपदेश करते हैं—

"सबदै जाने, ताँ आप पछाने।"

कि शब्द और नाम की लज्जत प्राप्त करके ही हम अपने आपको पहचानने के काबिल बनते हैं। हम अपने आपको तब पहचानते हैं जब हमारी आत्मा के ऊपर से सब गन्दे-गन्दे गिलाफ या आवरण उतर जाते हैं। इसलिए महात्मा हमें मुक्ति प्राप्त करने का सिर्फ यही साधन समझाते हैं कि हम अपने खयाल को अन्दर

शब्द या नाम के साथ जोड़ें। गुरु नानक साहिब एक और स्थान पर फरमाते हैं—

"शबद मरे सो मर रहे फिर मरे न दूजी बार।"

स्वामीजी महाराज समझाते हैं—

"नाम के रंग में रंग जा, मिले तोहे धाम निज अपना ॥"

ग्रंथों-पोथियों, वेदों-शास्त्रों में महात्मा उस नाम या शब्द की महिमा लिखते हैं। उनको पढ़ने से हमें समझ आ जाती है कि हमें नाम की कमाई क्यों करनी है और किस तरह करनी है। लेकिन ग्रंथों-पोथियों में वह नाम नहीं है, सिर्फ नाम को प्राप्त करने का तरीका है। उनके पढ़ने में मुक्ति नहीं है, जो पढ़ते हैं उस पर अमल करने में मुक्ति है। जिस तरह डॉक्टर की किताबों में नुस्खे या बीमारियों का इलाज करने के तरीके लिखे हुए हैं, लेकिन किताबों में दवाइयाँ नहीं हैं। कोई बीमार सारा दिन डाक्टरी की किताब पढ़कर ही स्वास्थ्य लाभ नहीं कर सकता। बल्कि, जो कुछ उस किताब में लिखा है उसके अनुसार दवा का उपयोग करके ही ठीक हो सकता है। दवा अपने आप में कोई और चीज़ है और किताबों में दवा का जिक्र कुछ और है। इसी प्रकार अगर कोई सारा दिन खाना बनाने की किताबें पढ़ता रहे जिनमें तरह-तरह के पकवान बनाने के तरीके लिखे हुए हैं तो उनको पढ़ने से उसे न तो खाने का स्वाद आ सकता है और न पेट ही भर सकता है। जब वह किताब के अनुसार खाना बनाकर खा लेता है तो पेट भी भर जाता है और स्वाद भी आ जाता है। इसी प्रकार अगर किसी को रेल से सफर करना है तो पहले टाइमटेबल या मार्ग-दर्शिका को अच्छी तरह पढ़ा जाता है। उससे पता चलता है कि रेल की यात्रा कितनी लम्बी है, कौन-कौन से स्टेशन रास्ते में आयेंगे, कितना किराया

लगेगा और कितने बजे गाड़ी स्टेशन से रवाना होगी। परन्तु उस टाइमटेबल को सिर्फ पढ़ने से ही हम अपनी मंजिले-मक्सूद पर नहीं पहुँच जाते। जब स्टेशन पर जाकर, टाइम-टेबल के अनुसार टिकिट लेकर गाड़ी पर सवार हो जाते हैं, तभी हम मंजिले-मक्सूद पर पहुँचने के अधिकारी बनते हैं। इस नुक्ते और स्थान पर आकर आज आम दुनिया भूली बैठी है। हम अपने ग्रन्थों-पोथियों, वेदों और शास्त्रों के पढ़ने-पढ़ाने को ही मुक्ति का साधन समझे बैठे हैं। और अक्सर तो हम खुद भी नहीं पढ़ते, बल्कि कोई पण्डित या ज्ञानी हमारे घर में पढ़ता रहता है और हम दुनिया के काम-काज में डूबे रहते हैं और मन में समझ लेते हैं कि न मालूम हम कितना फायदा उठा रहे हैं। अगर खुद बैठकर पढ़ें या सुनें तो उन महात्माओं के वचन हमारे कानों में पड़ें, हमें अपनी कमजोरियों और कमियों का पता लगे और फिर उनको दूर करने का मन में शौक पैदा हो, तरीके और साधन का पता लगे, तब तो उस पढ़ने-पढ़ाने का भी फायदा हो। हमने तो उसे सिर्फ एक रस्म-रिवाज या परिपाटी बनाया हुआ है कि शायद उस पण्डित के पढ़ने से ही हम मुक्ति प्राप्त कर लें। महात्मा हमारे खयालों को इन भ्रमों में से निकालते हैं। स्वामीजी महाराज फरमाते हैं—

"वेद शास्त्र सिमृत और पुराणा। पढ़-पढ़ सब पंडित हारा॥
बिन सतगुरु और बिन शब्द सुरत। कोई न उतरे भौ पारा॥"

इसी प्रकार गुरु नानक साहिब उपदेश देते हैं—

"पडीअहि जेते बरस-बरस, पड़ीअहि जेते मास॥
पड़ीऐ जेती आरजा, पड़ीअहि जेते सास॥
नानक लेखै इक गल होरु हौमै झखणा झाख॥"

चाहे हम सब दिन पढ़ते रहें, सारे महीने, सारे साल पढ़ते रहें,

सारी जिन्दगी और साँस-साँस पढ़ते रहें तो भी सिर्फ एक ही चीज़ हमारे हिसाब में लिखी जायेगी कि क्या हमारी सुरत अथवा आत्मा उस शब्द या नाम को पकडती है ? अगर नहीं, तो हमारा सब पढ़ना-पढ़ाना फिजूल है । यही तुलसी साहिब अपनी वाणी में लिखते हैं—

"चार अठारह नौ पढ़े, खट पढ़ खोया मूल ।
सुरत शबद चीन्हें बिना, ज्यों पंछी चण्डूल ।।"

चाहे कोई चारों वेद, अठारहों पुराण, नौ व्याकरण और छः शास्त्र भी पढ़ ले, लेकिन अगर उसने शब्द-सुरत का ज्ञान प्राप्त नहीं किया तो उसकी हालत चण्डूल पक्षी के जैसी है, जिसके लिए कहा जाता है कि जैसी बोली वह सुनता है उसी की नकल कर लेता है । कबीर साहिब का कथन है—

"पोथी पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय ।
ढाई अच्छर प्रेम के, पढ़ै सो पंडित होय ।।"

बुल्ले शाह भी यही उपदेश देते हैं—

"इलमों बस करीं ओ यार, इक्को अलफ तेरे दरकार ।
बहुता इल्म इज़राईल[1] ने पढ़िआ, झुगा झाहा उसदा सड़िआ ।।"

बाइबिल में हज़रत ईसा भी यही कहते हैं, "हे पिता ! लोक परलोक के स्वामी ! मैं तेरा शुक्रिया करता हूँ कि तूने इन बातों को ज्ञानियों और बुद्धिमानों से छिपाकर रखा और बालकों पर प्रकट किया है ।" (मेथ्यू ११:२५) आपके कहने का तात्पर्य है कि हे मालिक ! तूने इस गूढ़ रहस्य को सांसारिक और तर्क बुद्धिवाले

---

१. शैतान ।

लोगों से परे रखा है और केवल उन्हीं पर प्रकट किया है जो बच्चों के समान सरल और निष्कपट हैं।

हम ग्रन्थों-पोथियों, वेदों-शास्त्रों को पढ़कर वाचक ज्ञानी बन जाते हैं। वाद-विवाद करने की आदत पैदा हो जाती है। अपने आपको बड़े गुणी-ज्ञानी, आलिम-फाज़िल समझना शुरू कर देते हैं और दूसरों को नासमझ व अज्ञानी मानने लग जाते हैं। मन में हौमैं, घमंड और अहंकार आ जाता है, जबकि मालिक की भक्ति के मार्ग पर तो पढ़-लिखकर भी बच्चों के समान सरल बनना पड़ता है। ग्रन्थ-पोथियाँ और वेद-शास्त्र क्या हैं ? गुरु साहिबानों, ऋषियों-मुनियों, पीरों-पैगम्बरों ने मेहनत की और मालिक से मिलाप किया। जो कुछ नजारे उन्होंने अन्दर देखे और जो रुकावटें उन्होंने अन्दर महसूस की और देखीं, उन्होंने हमारे फायदे के लिए इन धर्म-पुस्तकों में उनका वर्णन कर दिया। ये पवित्र पुस्तकें उन महात्माओं के निजी अनुभवों का रेकार्ड या लेखा है। हमें उनके पढ़ने से वे अनुभव नहीं हो सकते, जब तक, जो कुछ हम पढ़ते हैं, उसके अनुसार अपने अन्दर खोज और जाँच-पड़ताल नहीं करते। यह खोज और तहकीकात करने का तरीका सिर्फ शब्द या नाम की कमाई है। वह नाम कहीं बाहर नहीं है, हमारे सबके शरीर के अन्दर है और हमारे लिए ही परमात्मा ने हमारे अन्दर रखा है। लेकिन उसकी खोज किस तरह करनी है, इसके भेद या तरीके का हमें सन्तों से ही पता लगता है। गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"अनहद बानी पूंजी, संतन हथ राखी कुंजी ॥"

गुरु अमरदासजी का कथन है—

"सतगुरु हथ कुंजी होर तों दर खुलै नाहीं,
गुरु पूरे भाग मिलावणिआँ ॥"

सन्तों की संगति

जिस परमात्मा ने हमें पैदा किया है, उसने हमारे लिए नाम की दौलत हमारे अन्दर रखकर उसका भेद सन्तों के हवाले कर दिया है। इसलिए उसे प्राप्त करने के लिए हमें सन्तों-महात्माओं की संगति करनी पड़ती है।

"जिनका गृह तिन दीआ ताला, कुंजी गुरु सौंपाई।
अनेक उपाव करे नहि पावे, बिन सतिगुरु सरनाई ॥"

गुरु अमरदासजी लिखते हैं—

"बिन गुरु दाते कोई न पाये, लख कोटी जे करम कमाए।"

पांचवी पातशाही गुरु अर्जुनदेवजी का कथन है—

"कहु नानक प्रभु इहो जनाई। बिन गुरु मुकत न पाए भाई ॥"

गुरु नानक साहिब फिर फरमाते हैं—

"सतगुरु सेवे सदा सुख पाए।
सतगुरु अलख दिया लखाए ॥"

और—

"मत को भरम भुले संसार। गुरु बिन कोई न उतरस पार ॥"

गुरु रामदासजी फरमाते हैं—

"सन्तो सुनो सुनो जन भाई गुरु काढ़ी बाँह कुकीजै।
जे आतम को सुख सुख नित लोढ़हु, ताँ सतगुरु शरन पवीजै ॥"

महात्मा सतगुरु की संगति व सोहबत पर बहुत ही जोर देते

हैं कि उनके बगैर हमारा मुक्ति प्राप्त करने का कोई सवाल ही पैदा नहीं होता। गुरु अर्जुनदेवजी फिर कहते हैं—

"सासत बेद सिमृत सब सोधे, सब एका बात पुकारी ॥
बिन गुरु मुकति न कोई पावे, मन देखो कर विचारी ॥"
"बिन सतगुरु कोऊ नाम न पाए, प्रभु ऐसी बणत बनाई हे ॥"

मालिक ने अपने मिलने का यही कुदरती कानून रखा है। जब भी वह मिलता है, सन्तों-महात्माओं के जरिए ही मिलता है। हज़रत ईसा भी बाइबिल में यही कहते हैं, "हे सब मेहनत करने वालों और बोझ से दबे हुए लोगों ! मेरे पास आओ, मैं तुम्हें चैन प्रदान करूँगा।" (मेथ्यू ११:२८) अर्थात् ऐ दुनिया वालों, तुम जो गुनाहों के बोझ से लदे और थके हुए हो, मेरे पास आओ, मैं तुमको आराम और शान्ति दूंगा। आगे फिर कहते हैं—

"मैं ही मार्ग, हकीकत और जीवन हूँ। बिना मेरे जरिए कोई भी पिता के पास नहीं पहुँच सकता। अगर तुमने मुझे पहचाना होता तो मेरे पिता को भी पहचान लेते; पर अब से तुम उसे जानते हो और तुमने उसे देखा भी है।" (जॉन १४:६,७)

अर्थात् तुम अपने पिता से सिर्फ मेरे ही द्वारा मिल सकते हो। मैं ही उससे मिलाने का साधन और रास्ता हूँ। अगर तुमने मुझे पहचान लिया है तो तुमने उस परमात्मा को पहचान लिया और देख लिया है। आगे फिर कहते हैं, "और जो मुझे देखता है वह मेरे भेजनेवाले को देखता है।" (जान १२:४५) अर्थात् मैंने उस परमात्मा को देखा है, तुमने मुझे देखा है, इसलिए तुमने भी उस परमात्मा को देखा है। इसी प्रकार एक और जगह कहते हैं, "जगत की ज्योति मैं हूँ; जो मेरे पीछे चलेगा वह अँधेरे में नहीं चलेगा, बल्कि जीवन की ज्योति पा जाएगा।" (जान ८:१२)। तुलसी साहिब भी यही उपदेश देते हैं—

"तुलसी या संसार में, पाँच रतन हैं सार ।
साध संग सतगुरु शरन, दीन, दया, उपकार ॥"

फिर फरमाते हैं—

"सोना काई ना लगे, लोहा घुन नहीं खाय ।
बुरा भला जो गुरु भगत, कबहुँ नरक न जाय ॥"

अपनी वाणी में स्वामीजी महाराज भी यही जिक्र करते हैं—

"यह देही फिर हाथ न आये । फिरो चौरासी बन में ॥
गुरु सेवा कर गुरु रिझाओ । आओ तुम इस ढंग में ॥
गुरु बिन तेरा और न कोई । धर वचन यह मन में ॥"

फिर फरमाते हैं—

"बिन मेहर गुरु नहीं पावे । बिन शब्द हाथ नहीं आवे ॥
सुरत खैंच चढ़ाओ गगनी । धुन शब्द सुनो यह करनी ॥

कबीर साहिब भी फरमाते हैं—

"कबीर गुरु की भगति बिन, नार कूकरी होय ।
गली गली घूमत फिरे, टूक न डाले कोय ॥
कबीर गुरु की भगति बिन, राजा गदहा होय ।
माटी लदे कुम्हार की, घास न डारे कोय ॥
उज्जल पहने कापडा, पान सुपारी खाय ।
कबीर गुरु की भगति बिन, बांधा जमपुर जाय ॥"

फिर फरमाते हैं—

"गुरु बिन माला फेरते, गुरु बिन करते दान ।
गुरु बिन सब निस्फल गया, बूझो बेद पुरान ॥".

चौथी पातशाही गुरु रामदास जी का कथन है—

"बिन गुरु साकत कहु को तरिआ। हौमैं करता भव जल परिआ।।
बिन गुरु पार न पावे कोई। हरि जपिए पार उतारा हे।।"

और फरमाते हैं—

"जिना सतिगुर पुरष न भेंटिओ। से भाग हीन बस काल।।
ओ फिर फिर जून भवाइए। विच विसटा कर विकराल।।"

जिन्हें पूरा सतगुरु नहीं मिला वे बड़े भाग्यहीन हैं। वे हमेशा काल के मातहत या अधीन रहते हैं। उन्हें बार-बार जन्म-मरण के दुःखों में आना पड़ता है, यहाँ तक कि उनको अन्त में गन्दगी के कीड़े तक बनकर दुःख उठाना पड़ता है। जो पूरे सतगुरु की खोज नहीं करते, वे शब्द या नाम के साथ कभी नहीं जुड़ सकते। वे अपने कर्मों के अनुसार चौरासी के जेलखाने में दुःख और मुसीबतें भुगतते हैं। असल में वे दुनिया में आकर जीते हुए भी मुर्दे के समान ही रहते हैं।

गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"सतगुर की सेव न कीनिआ, हरि नाम न लगिओ पिआर।
मत तुम जानो ओ जीवँदे, ओ आप मारे करतार।।"

हर एक मनुष्य खुशी और शान्ति की तलाश करना चाहता है और भिन्न-भिन्न वस्तुओं में, अलग-अलग स्थानों में जाकर सुख व शान्ति ढूंढ़ता है। लेकिन असली खुशी सिर्फ शब्द में ही है, जिसके साथ हमारा खयाल सिर्फ सतगुरु के जरिये ही जुड़ सकता है। वह शब्द बेशक हमारे अन्दर है, लेकिन अगर हमें किसी सन्त-महात्मा की संगति नहीं मिली है तो हम उस ऊँची, सच्ची और पवित्र धुन को कभी भी नहीं पकड़ सकते। अतएव, हमें चाहिए कि पूरे गुरु की तलाश करें, जो हमारे खयाल को उस शब्द से जोड़कर हमें मालिक से मिला दे। और कोई वस्तु हमें असली और सच्ची खुशी नहीं दे

सकती । तीसरी पातशाही श्री अमरदासजी फरमाते हैं कि मनुष्य अगर संसार में अनेक प्रकार के भोग भोग रहा है, नौ खण्ड पृथ्वी का राज भी कर रहा है, तो भी उसे बिना सतगुरु के सच्चा सुख नहीं मिल सकेगा और वह बार-बार जन्मता और मरता रहेगा ।

सांई बुल्ले शाह क्या जोर के साथ पुकारते हैं—

"बिन मुरशद कामिल बुल्लया तेरी एवें गई इबादत कीती ।"

फिर कहा है—

"बुल्ला शौह दी सुनो हिकायत, हादी फड़याँ होई हिदायत ।
मेरा साँई शाह इनायत, ओहू लंघावे पार ।।"

सन्तों-महात्माओं को हमारे अन्दर घोलकर कुछ नहीं डालना है। वह दौलत हमारे अन्दर ही है, हमारे लिये ही परमात्मा ने रखी है और अन्दर से ही मिलेगी। सन्त तो सिर्फ युक्ति और साधन समझाते हैं । जिस तरह विद्या की ताकत हरएक मनुष्य के अन्दर जन्म से ही है, लेकिन सोयी हुई है । जब हम स्कूलों-कालेजों में जाते हैं, शिक्षकों के आदेश में चलते हैं, रातों को जागते हैं, तब वह सोयी हुई ताकत हमारे अन्दर से ही जाग उठती है। फिर हम बी. ए., एम. ए. कर लेते हैं, विद्वान बन जाते हैं। जो विद्यार्थी शिक्षकों से डरकर स्कूलों-कॉलेजों में नहीं जाते, विद्या की ताकत उनके अन्दर भी है, लेकिन वह सोती आई है और सोती ही चली जाती है । जो विद्या प्राप्त कर लेते हैं उनके अन्दर शिक्षक घोलकर तो कुछ नहीं डालते, सिर्फ उनकी संगति करने से ही विद्यार्थियों की बुद्धि और प्रतिभा तेज हो जाती है । हम सबको यह मालूम है कि दूध के अन्दर घी है, परन्तु अगर हमें युक्ति या तरीका पता न लगे तो हम कभी भी उस घी को दूध में से प्राप्त नहीं कर सकते । घी हमेशा दूध से ही निकलता है, लेकिन युक्ति के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता ।

गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"कासठ में जिम्रों है वैसंतर, मत संजम काढ़ कढ़ीजे।
राम नाम है जोत सभाई, तत गुरमत काढ़ लीजे ॥

जिस प्रकार लकड़ी के अन्दर आग होती है, परन्तु वह हमें दिखाई नहीं देती और न हम उस अग्नि से कोई फायदा उठा सकते हैं। जब लकड़ी पर लकड़ी रगड़ते हैं तो इस युक्ति के द्वारा अग्नि भी प्रगट कर लेते हैं और उससे फायदा भी उठा लेते हैं। इसी तरह वह राम नाम की जोत हमारे सबके अन्दर है, परन्तु सतगुरु के उपदेश पर चलकर ही हम उसे प्राप्त कर सकते हैं। गुरु नानक साहिब बड़ी अच्छी मिसाल देकर समझाते हैं—

"घर रतन लाल बहु माणक लादे मन अमिम्रा लहि न सकाईऐ।
जिउँ ओडा कूप गुहज खिन काढ़ै तिउँ सतिगुर वसतु लहाईऐ ॥"

हमारे घर के अन्दर अर्थात् शरीर के अन्दर परमात्मा ने नाम रूपी अपार दौलत रखी है, परन्तु हमारा मन बाहरमुखी होकर भ्रमों में उलझा बैठा है। जब तक हम अपने शरीर में प्रवेश करके खोज नहीं करते, उस दौलत को प्राप्त नहीं कर सकते। आमतौर पर पुरानी आबादियों के नीचे बने बनाए कुए मिट्टी से भरकर दब जाते हैं। हम उन जमीनों पर चलते-फिरते हैं परन्तु हमें मालूम नहीं होता कि इस जगह कुआ मिट्टी के नीचे दबा हुआ है। लेकिन ओड[1] लोग हमें विद्या और हुनर के द्वारा बता देते हैं कि अमुक जगह मिट्टी की खुदाई करो तो बना बनाया कुआ मिल जायेगा। ओड लोग कुआ बनाकर उसे मिट्टी से दबाकर हमें पता नहीं देते हैं, उनको यह ज्ञान और इल्म होता है, जिसका फायदा उठाकर हम उस कुए का उपयोग शुरू कर सकते हैं। इसी तरह महात्माओं

---

१. ओड—जल-गणक या पानी-पंडित जो जमीन के अन्दर पानी की उपस्थिति बतलाते हैं।

को भी हमारे अन्दर कोई वस्तु नहीं डालनी है । उनको इल्म और ज्ञान है कि हमारे अन्दर वह परमात्मा है और उससे मिलने का रास्ता भी हमारे अन्दर ही है । सन्त हमें अन्तर में उस रास्ते पर लगा देते हैं। इसलिए हमें सन्तों-महात्माओं की तलाश करनी पड़ती है, उनकी संगति और सोहबत में रहना पड़ता है । हमारा मन हमेशा संगति का असर लेता है । अगर हम शराब पीने वालों की संगति करते हैं तो हमें भी वैसी ही आदत पड़ जाती है । अगर जुआरियों की संगति करते हैं तो वैसे-वैसे खयाल हमारे मन में भी लहरें उठाना शुरू कर देते हैं । अगर हम मालिक के भक्तों और प्रेमियों की संगति करते हैं तो उनको देखकर हमारे अन्दर भी परमात्मा से मिलने का शौक और प्यार पैदा हो जाता है क्योंकि वे परमात्मा की भक्ति में लगे हुए हैं । गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"साकत सूत बहु गुज्झी भरिआ, किओं कर तान तनीजे ।।
तन्त सूत किछु निकसे नाहीं, साकत संग न कीजे ।।"

अगर सूत में बहुत सारी गुत्थियाँ हों, तो उससे कभी भी कपड़ा नहीं बुना जा सकता । इसी प्रकार, मनमुखों का मन सारी दुनिया में फैला हुआ है । वे दिन-रात इन्द्रियों के भोगों, विषयों-विकारों में ही लगे रहते हैं । उनकी संगति और सोहबत में जाकर हमारा खयाल किस प्रकार परमात्मा की भक्ति की ओर जा सकता है ? फिर उपदेश देते हैं—

"साकत नर प्रानी सद भूखे नित भूखन भूख करीजे ।।
धावत धाए, धावे प्रीत माया, लख कोसन को विथ दीजे ।।"

मनमुख लोग हमेशा भूखे रहते हैं । परमात्मा उन्हें जो वे चाहें चीज बख्श दे, कितनी ही नेक संतान हो, धन-दौलत हो, दुनिया में मान, इज्जत और बड़ाई हो, स्वास्थ्य हो, लेकिन वे फिर

भी कभी परमात्मा से परमात्मा को नहीं माँगते वे, हमेशा परमात्मा से अपनी दुनिया की इच्छाएँ और तृष्णाएँ पूरी करवाना चाहते हैं। जो लोग हमेशा दुनिया के पदार्थों और शक्लों की ओर ही भागते हैं, गुरु नानक साहिब समझाते हैं कि ऐसे लोगों की कभी भूले भटके भी संगति नहीं करना चाहिये, बल्कि उनसे लाख कोस दूर रहना चाहिये। फिर किसकी संगति करना चाहिये ? आप उपदेश करते हैं—

"गोविन्दजीओ सत संगति मेल हरि धिआइऐ ॥

कि हे परमात्मा ! सन्तों-महात्माओं की संगति और सोहबत दे, ताकि तेरा पता लगे, तेरी ओर हमारा खयाल जाये। महात्मा हमेशा संगति पर जोर देते हैं, क्योंकि सन्तों के सत्संग में जाकर ही पता लगता है कि आत्मा और परमात्मा का रिश्ता क्या है ? आत्मा और परमात्मा के बीच में रुकावट किस चीज की है ? और वे रुकावटें हमारे अन्दर से किस तरह दूर हो सकती हैं ? महात्मा सत्संग उसको नहीं कहते जहाँ एक कौम दूसरी कौम की निन्दा करती हो, जिस जगह एक मजहब दूसरे मजहब का गला काटने के उपाय सोचता हो या जहाँ पुराने राजा-महाराजाओं की पुरानी कथा-कहानियाँ सुनाई जाती हों। सन्तों के सत्संग में किसी की भी निन्दा और बुराई नहीं की जाती। वे सिर्फ हमारे अन्दर मालिक से मिलने का शौक और प्यार पैदा करते हैं और हमें मालिक से मिलने का रास्ता, तरीका और साधन बतलाते हैं। यह तो बहुत ही अनुचित बात है कि अगर कोई हमारी बुद्धि और इच्छा के अनुसार परमात्मा की भक्ति नहीं करता तो हम उसे डंडे मारना और तलवारों से डराना शुरू कर दें। बल्कि हमें उन लोगों को प्यार से समझाना चाहिये कि इस रास्ते पर चलकर हमें यह फायदा प्राप्त हुआ है, अगर तुम्हारी बुद्धि और समझ में आता है तो तुम भी इस रास्ते पर चलकर यह फायदा उठा सकते हो। यह तो

बहुत ही बुरी और नामुनासिब बात है कि अगर कोई किसी की अक्ल के अनुसार मालिक की भक्ति नहीं करता तो उसे भला-बुरा कहना शुरू कर दिया जाये। गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"सत संगति कैसी जाणिऐ, जित्थे इको नाम बखाणिऐ।"

असली सत्संग तो पूरे गुरु की मौजूदगी में ही हो सकता है। जब तक पूरा और सच्चा गुरु न हो जो आन्तरिक शब्द का रास्ता बता सके, जो खुद शब्द और परमात्मा के साथ मिला हुआ हो और दूसरों को भी उसके साथ मिलाने की शक्ति रखता हो, तब तक उसको असली सत्संग नहीं कह सकते। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"सतगुर बाझों संगत न होई। बिन सबदे पार न पाए कोई।"

कबीर साहिब भीं सत्संग की इस प्रकार महिमा करते हैं—

"कबीर संगत साध की, जौ की भूसी खाय।
खीर खांड भोजन मिले, साकत संग न जाय॥"

इसलिये आगे समझाते हैं—

"एक घड़ी आधी घड़ी, आधी से भी आध।
कबीर संगत साध की, कटे कोट अपराध॥"

यही स्वामीजी महाराज का उपदेश है—

"मित्र तेरा कोई नहीं संगियन में। पड़ा क्यों सोवे इन ठगियन में।
चेत कर प्रीत करो सतसंग में। गुरु फिर रंग दें नाम अरंग में॥"

एक और स्थान पर समझाते हैं—

"अटक तू क्यों रहा जग में। भटक में क्या मिले भाई॥
खटक तू धार अब मन में। खोज सतसंग में जाई॥"

मौलाना रूम भी अपने कलाम में फरमाते हैं—

"हम नशीनीं साअ्ते बा औलिया, बहतर अज़ सद साला ताअ्त बेरया।"

कि मालिक के भक्तों और प्यारों की एक घड़ी की भी संगति या सोहबत मन और बुद्धि की सौ साल की बन्दगी से बेहतर है। अगर रास्ता पूरब की तरफ है और हम पश्चिम की तरफ दौड़ रहे हैं तो हम अपनी मंज़िले-मक्सूद से और दूर होते चले जा रहे हैं। हरएक महात्मा सत्संग के जरिये ही हमारे अन्दर मालिक से मिलने का शौक और प्यार पैदा करता है।

सन्तों का असली स्वरूप

सन्तों का असली स्वरूप शब्द और नाम ही होता है। वे शब्द या नाम में से ही आते हैं और हमारे खयाल को शब्द या नाम के साथ जोड़कर उसी नाम में वापस जाकर समा जाते हैं। मनुष्य का उस्ताद या शिक्षक मनुष्य ही हो सकता है। देवी-देवता किसी ने देखे नहीं, परमात्मा के स्वरूप का किसी को पता ही नहीं, जब तक कोई हमें हमारे जैसा मनुष्य होकर न समझाये तब तक उस मालिक के बारे में हमें कुछ भी समझ नहीं आ सकती। हजरत ईसा ने उन महात्माओं को 'देह-धारी शब्द' कहा है, अर्थात् वह शब्द जब मनुष्य के जामे में आ जाता है हमारे लिए देहधारी गुरु बन जाता है। परमात्मा और शब्द एक ही चीज है। हजरत ईसा कहते हैं—

"मैं और मेरे पिता एक ही हैं।" (जान १०:३०)

"आदि में शब्द था, शब्द परमात्मा के साथ था और शब्द ही परमात्मा था।" (जॉन १:१)

"और शब्द देहधारी हुआ और हमारे बीच में आकर रहा।"
(जान १:१४)

"और यीसू, पवित्र आत्मा (शब्द) से परिपूर्ण, जोर्डन से लौटा।
(ल्यूक ४:१)

हजरत ईसा खुद अपने बारे में लिखते हैं, "मैं पिता में से प्रकट हुआ, और इस दुनिया में आया हूँ, मैं दुनिया को छोड़ूंगा और वापस पिता में समा जाऊँगा" (जान १६:२८)। आगे कहते हैं, "जब मैं दुनिया में उनके साथ था मैंने उन्हें तेरे नाम से जोड़े रखा। जिनको तूने मुझे दिया था उनको मैंने सँभाला और किसी को भी नहीं खोया" (जान १७:१२)। अर्थात् हे मालिक! जितने समय मैं दुनिया में रहा, मैंने उन सब रूहों की सँभाल की जो तूने मेरे सुपुर्द की थीं और उनमें से किसी को भी गुमराह नहीं होने दिया।

मालिक और मालिक के भक्तों में कोई भिन्नता या भेद नहीं है। वे मालिक की भक्ति करके मालिक का ही रूप हो जाते हैं। श्रुति का कथन है, "ब्रह्म वेत्ता ब्रह्म एव भवति" कि ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है। जिस प्रकार, समुद्र की लहरें समुद्र में से उठती हैं और वापस समुद्र में ही जाकर समा जाती हैं। इसी प्रकार जो लहर का समुद्र के साथ रिश्ता है, वही मालिक के भक्तों का, सन्तों का उस मालिक से रिश्ता होता है। सन्त उस सतनाम के समुद्र की लहर होते हैं जो दुनिया में आकर हमारे खयाल को शब्द या नाम के साथ जोड़कर, बल्कि हमको साथ ले जाकर, उसी सतनाम के समुद्र में समा जाते हैं। परमात्मा जब हमें देह के बन्धनों से छुड़ाना चाहता है तो वह खुद सतगुरु के अन्दर बैठकर, हमारे खयाल को शब्द के साथ जोड़कर हमें वापस ले जाकर अपने में ही मिला लेता है। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"हरि का सेवक सो हरि जेहा, भेद न जानहु मानस देहा ॥
जिउँ जल तरंग उठहि बहु भाँती, फिर सलिले सलिल समाइंदा ॥"

फिर फरमाते हैं—

"सतगुरु विच आप रखीओन कर परगट आख सुनाइआ ॥"

गुरु और परमात्मा एक ही है। दोनों में सिर्फ इतना ही भेद है

कि परमात्मा गुरु का ही वास्तविक स्वरूप है और गुरु मनुष्य के चोले में परमात्मा है। जब तक परमात्मा, गुरु का रूप धारण करके हम मनुष्यों के चोले में हमारी सतह पर नहीं आता, वह हमारे साथ अपना सम्बन्ध पैदा नहीं कर सकता। परमात्मा गुरु के अन्दर बैठ-कर ही बोलता है।

"बिन काया ब्रह्म कैसे बोले। ब्रह्म बोले काया के ओले।।"

गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"गुरु महिं आप रखिआ करतारे।"

एक अन्य स्थान पर लिखते हैं—

"समुंद विरोल सरीर हम देखिआ, इक वसतु अनूप दिखाई।
गुरु गोविंद गोविंद गुरु है, नानक भेद न भाई।।"

गुरु साहिब समझाते हैं कि हमने शरीर के अन्दर शब्द की कमाई करके देखा है कि परमात्मा और गुरु एक ही हैं, दोनों में कोई अन्तर नहीं। फिर लिखते हैं, "गुरु परमेसर एको जान।" मौलाना रूम फरमाते हैं—

"दर बशर रू पोश कर्द अस्त आफताब।"

अर्थात् मनुष्य के अन्दर (रूहानी) सूर्य ने खुद को छिपा रखा है। यही बुल्लेशाह समझाते हैं, "मौला आदमी बन आया।" कबीर साहब भी यही फरमाते हैं—

"राम कबीरा एक है, कहन सुनन को दोय।
दोय कर सोइ जाने, जे सतगुरु मिला न होय।।"

बाइबिल में ईसा मसीह कहते हैं, "मुझमें विश्वास करो, मैं पिता में हूँ और पिता मुझमें है।" (जॉन १०:३८ तथा १४:११)।

स्वामीजी महाराज भी यही फरमाते हैं—

"राधास्वामी धरा नर रूप जगत में ।
गुरु होय जीव चिताये ।।"

राधास्वामी से मतलब उस कुल मालिक से है । नामदेवजी कहते हैं—

"आतम राम देह धरिओ, तन मन हरि को देखो ।
कहत नामदेव बलि बलि जाऊँ, हरि भज अवर न लेखो ।।"

शम्स तब्रेज़ का कथन है—

"आँ पादशाहे आज़म दर बस्तः बूद मुहकम ।
पोशीदा दल्के आदम यानी के बर दर आमद ।।"[1]

सच्चे गुरु हमें बाहरी रीति-रिवाजों या परिपाटियों में नहीं फँसाते, बल्कि अन्दर शब्द की कमाई करने का तरीका बतलाते हैं । पूर्ण गुरु हमें अपने शरीर के अन्दर ही असली घर जाने का रास्ता दिखाते हैं। गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"घर महिं घर दिखलाइ देइ सो सतिगुर पुरख सुजान ।
पंच सबद धुनकार धुन तहँ बाजै सबद निसान ।"

यही स्वामीजी महाराज का अनुभव है—

"घर में घर गुरु दिखलावें । धुन शब्द पाँच बतलावें ।।"

महात्मा समझाते हैं कि हमारे निज घर सचखण्ड के मार्ग में हमारे अन्दर पाँच मंजिलें हैं । हज़रत ईसा ने भी यही इशारा किया

१. उस महान बादशाह ने हमें बाहर निकालकर दरवाज़ा पक्के तौर पर बन्द कर दिया है । फिर वह आदमी की पोशाक में छिपकर खुद ही दरवाजा खोलने आ गया है ।

है, "मेरे पिता के घर में बहुत से निवास स्थान हैं।" (जॉन १४:२)। हरएक मंज़िल का अपना-अपना शब्द या धुन है। सच्चा गुरु हमें उन पाँच मंज़िलों से ले जाकर, पाँचों शब्दों या धुनों से जोड़कर परमात्मा तक पहुँचा देता है। असल में शब्द तो एक ही है, परन्तु हर मंज़िल में उसकी अलग-अलग आवाज़ है और अलग-अलग प्रकाश है। उदाहरण के तौर पर, एक नदी अपने स्रोत से निकलती है और समुद्र में जाकर समाती है। लेकिन, उस नदी की भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न आवाज़ होती है। जहाँ से निकलती है वहाँ उसकी और आवाज़ है, जिस समय बड़ी-बड़ी चट्टानों और खड्डों में से गुजरती है उसकी आवाज़ और है, जब वह झरना बनकर गिरती है तो आवाज़ बदल जाती है, जब वह मैदानों में फैलती है उसको आवाज़ और ही हो जाती है और जब नदी समुद्र में समाती है तो आवाज़ भिन्न हो जाती है। परन्तु हर जगह नदी एक ही होती है। कबीर साहिब भी अपने प्रसिद्ध पद "कर नैनों दीदार महल में प्यारा है" में पाँच शब्दों का जिक्र करते हैं और शब्द की साधना पर जोर देते हैं—

"साधो सबद साधना कीजै।
जा सबद से परगट भये सब, सोई सबद गह लीजै॥"

मौलाना रूम साहिब फरमाते हैं—

"बहफ्तम फलक नौबत पंज याबी।
चो खेमा ज़ शश जहत बरकन्दा बाशी॥"

कि जब तू नीचे के छः चक्रों से निकलकर सातवें आसमान में पहुँच जायेगा तो वहाँ पाँच नौबतें बजती हुई सुनेगा। इसी प्रकार शम्स तबरेज़ अपने कलाम में लिखते हैं—

"खामोश पंज नौबत बिशनोज़ आसमाने।
कां आसमाने बेरूँ जाँ हफ्तो ईं शश आमद॥"

कि खामोशी के साथ आसमान की पाँच नौबतें या धुनें सुन। वह आसमान हमारे सात आसमानों और छः चक्रों के परे है। फिर एक अन्य स्थान पर लिखते हैं—

"हर रोज पंज नौबत बर दरे ऊ।
हमे को बन्द कोसे किब्रयाई ॥"

कि हर रोज उसके दरवाज़े पर पाँच खुदाई नक्कारे बजते हैं। आनंद साहिब में हम रोज पढ़ते हैं—

"बाजे पंच सबद तित घर सुभागे।
घर सुभागे, सबद बाजे, कला जित घर धारीआ ॥
पंच दूत तुध बसि कीते, काल कंटक मारिआ ॥"

कबीर साहिब फरमाते हैं—

"पंजे शबद अनाहद बाजे, संगे सारिगपानी।
कबीरदास तेरी आरती कीनी निरंकार निरबानी ॥"

बेणीजी ग्रन्थ साहिब में फरमाते हैं—

"पंच सबद निरमाइल बाजे, ढुलके चँवर संख घन गाजे।
दल मल दैतहु गुरमुख गियान, बेणी जाचै तेरा नाम ॥"

पूर्ण गुरु

पूरा गुरु वही है जो इन पाँचों शब्दों के द्वारा हमें अपने सच्चे घर ले जाता है। स्वामीजी महाराज भी अपनी वाणी में यही लिखते हैं कि शब्द स्वरूपी, शब्द-अभ्यासी गुरु की ही तलाश करनी चाहिये—

"गुरु सोई जो शब्द सनेही। शब्द बिना दूसर नहिं सेई ॥
शब्द कमावे सो गुरु पूरा। उन चरनन की हो जा धूरा ॥

श्रौर पहिचान करो मत कोई। लक्ष श्रलक्ष न देखो सोई ।।
शब्द भेद लेकर तुम उनसे । शब्द कमाश्रो तुम तन-मन से ।।"

हज़रत ईसा भी यही कहते हैं कि अगर पूरा महात्मा नहीं होगा तो वह खुद अपने शिष्यों के साथ डूब जायेगा । फरमाया है, "अगर अन्धा अन्धे का मार्ग-दर्शन करेगा, तो दोनों गड्ढे में गिरेंगे।" (मेथ्यू १५:१४) । गुरु नानक साहिब भी यही समझाते हैं—

"सतगुरु पूरा सबद सुनाए । अनदिन भगति करहु लिव लाए ।।"

पलटू साहिब भी यही कहते हैं—

"धुन आने जो गगन की, सो मेरा गुरुदेव ।"

पूरे श्रौर सच्चे गुरु की यही पहचान है कि वे हमारी श्रात्मा को अनहद शब्द के साथ जोड़ देते हैं। जिसे ऐसा गुरु मिल जाता है वह अपने अन्दर उस शब्द की ऊँची श्रौर मीठी श्रावाज़ को सुनना शुरू कर देता है, जो कि शुरू-शुरू में घण्टे की श्रावाज़ के समान होती है। गुरु अर्जुनदेव लिखते हैं, "घण्टा जाका सुनिये चहु कुंट।" गुरु नानक साहिब पूरे गुरु की महिमा में फरमाते हैं—

"कहु नानक जिस सतिगुरु पूरा । बाजे ताके अनहद तूरा ।।"

आगे फरमाते हैं—

"अखंड कीर्तन तिन भोजन चूरा । कहु नानक जिन सतिगुरु पूरा ।।"

वह अनहद शब्द ही अनन्त श्रौर कभी बन्द न होनेवाला श्रौर ऊँचा श्रौर सच्चा संगीत है। वह शब्द ही हमेशा हमारे अन्दर गूंजनेवाली ईश्वरीय श्रावाज है। सच्चे गुरु अपने सेवक को उस शब्द को सुनने का भेद श्रौर तरीका बतलाते हैं, उस अनहद

शब्द को अन्तर में सुनने और उसी में जाकर समाने की रीति बतलाते हैं। गुरु खुद उस शब्द या नाम के साथ जुड़ा होता है। वह हमें भी उस शब्द या नाम के साथ जोड़कर परमात्मा में लीन कर देता है। हज़रत ईसा ने भी यही इशारा किया है कि तुम मेरे अन्दर समाये हुए हो, मैं उस परमात्मा के अन्दर समाया हुआ हूँ, इसलिए तुम भी उस परमात्मा के अन्दर समाये हुए हो। वे इस प्रकार कहते हैं, "जिसने मुझे देखा है उसने पिता को देखा है। क्या तुम सच नहीं मानते कि मैं पिता में और पिता मेरे अन्दर है।" (जॉन १४:९-१०।)

स्वामीजी महाराज लिखते हैं—

"शब्द भेद तुम गुरु से पाओ। शब्द माँहि फिर जाय समाओ॥"

"वास्तव में गुरु का असली रूप शब्द ही है। शरीर तो उस शब्द ने सिर्फ दुनिया के जीवों को समझाने-बुझाने और चेताने के लिए ही धारण कर रखा है। और न ही जीवों का असली रूप यह शरीर है। यह शरीर तो गुरु और शिष्य दोनों को ही यहीं छोड़ जाना है। शिष्य का असली रूप भी आत्मा है, जो अन्त में जाकर उस शब्द में ही समायेगी। गुरु अपना शरीर छोड़ देने के बाद भी शब्द-स्वरूप से शिष्य की सँभाल करता है। बाइबिल में हज़रत ईसा कहते हैं, "ये बातें मैंने तुमसे कहीं जब कि मैं तुम्हारे साथ मौजूद हूँ। लेकिन वह सान्त्वना प्रदान करनेवाला (शब्द) जो कि पवित्र आत्मा है, जिसे पिता मेरे नाम से भेजेगा वह तुम्हें सब बातें सिखाएगा और जो कुछ मैंने तुमसे कहा है वह सब तुम्हें याद दिलायेगा।" (जॉन १४:२५-२६)।

अर्थात् जब मैं इस शरीर को छोड़कर चला जाऊँगा, तो वह मालिक मेरे नूरानी स्वरूप में उस शब्द को तुम्हारे अन्दर प्रकट करेगा और फिर वह नूरानी स्वरूप तुम्हारी सँभाल और रहनुमाई करेगा।

गुरु वास्तव में शब्द ही है। जीवों के लिए वह इस दुनिया

में शरीर धारण करके उनको मालिक तक पहुँचाने का जरिया अथवा माध्यम बनता है और फिर अपना काम पूरा करके उस शब्द में ही जा समाता है। इसी तरह मनुष्य की आत्मा भी उस शब्द की ही किरण है और किसी सच्चे गुरु को पाकर वह भी वापस उस शब्द में ही जा समाती है। गुरु नानक साहिब भी यही फरमाते हैं, "शबद गुरु सुरत धुन चेला।"

जो सन्त पहले हो चुके हैं वे जरूर पूर्ण सन्त थे। परन्तु हम उनसे अब लाभ नहीं उठा सकते। हमें अब किसी जीवित देहधारी महात्मा की खोज करनी पड़ेगी। अगर कोई बीमार आज कहे कि उसे लुकमान हकीम से अपना इलाज करवाना है तो वह अब उसका इलाज करने के लिए नहीं आयेगा। उसे किसी मौजूदा डाक्टर या हकीम के पास जाना पड़ेगा। अगर कोई सिक्ख कहे कि वह अपने मुकदमे का फैसला महाराजा रणजीतसिंह से करायेगा तो अब महाराजा रणजीतसिंह तो उसका फैसला करने नहीं आ सकते। उसे आज किसी मौजूदा न्यायाधीश या हाकिम की अदालत में ही जाना होगा। अगर कोई स्त्री कहे कि वह राजा विक्रमादित्य से शादी करना चाहती है तो राजा विक्रमादित्य तो उससे शादी करने नहीं आयेगा। अतएव जिस प्रकार वक्त का हकीम, वक्त का हाकिम और मौजूदा पति ही इस समय काम आ सकते हैं, इसी प्रकार हमें भी मौजूदा गुरु की ही जरूरत है और उसी से हमारा काम बन सकेगा। यही इशारा हज़रत ईसा ने बाइबिल में जॉन दि बैपटिस्ट के बारे में किया है—

"वह तो जलता और चमकता हुआ ज्योति-पुंज था और तुम्हें एक वक्त तक उसकी ज्योति में मग्न होना मंजूर था।"
(जॉन ५:३५)

फिर अपने बारे में हजरत ईसा खुद बिल्कुल साफ लफ्जों में कहते हैं, "जिसने मुझे भेजा है मुझे उसका काम करना जरूरी है, जब तक कि दिन है (मेरे जीवन-काल में); रात आती है, जब

कोई मनुष्य काम नहीं कर सकता। जब तक मैं दुनिया में हूँ, मैं दुनिया की ज्योति हूँ।'' (जॉन ९:४-५)।

गुरु की जरूरत सिर्फ इसलिए है कि वह हमारे जैसा मनुष्य होकर हमें हर चीज़ अच्छी तरह समझा सकता है। अगर हम मौजूदा गुरु के बगैर ही मालिक की भक्ति कर सकते तो जिन पुराने महात्माओं की हम आज टेक लिए बैठे हैं, वे क्यों देह में आते। वे अपना काम करके फिर उसी परमात्मा के स्तर पर जाकर उसी में समा गये हैं। अब तो हमें उस जीवित देहधारी महात्मा की जरूरत है जो हमारे जैसा मनुष्य होकर हमें समझाये। संसार का कोई भी कार्य हम उस्ताद या शिक्षक के बगैर नहीं सीख सकते। हम देखते हैं कि इंजीनियरिंग और डाक्टरी पर लोगों द्वारा लिखी कितनी खोजपूर्ण पुस्तकें पुस्तकालयों में भरी पड़ी हैं, परन्तु कोई व्यक्ति ऐसा नहीं मिलेगा जो उन किताबों को पढ़कर इंजीनियर या डाक्टर बन गया हो। पन्द्रह-बीस साल शिक्षकों की संगति करके, मेहनत करके इन विद्याओं की जानकारी प्राप्त होती है और उसके बाद व्यवहारिक अभ्यास भी करना पड़ता है, तब कहीं जाकर इनका कुछ ज्ञान प्राप्त होता है। हमें बचपन से ही हर मंज़िल पर, हर कदम पर किसी शिक्षक या रहबर की जरूरत रही है। रूहानियत का विषय तो बहुत ही पेचीदा है। जब तक हमें कोई ऐसा रहबर या मार्ग-दर्शक न मिले, जो अन्दर की रूहानी मंज़िलों पर गया हो और हम उसके अनुभव से फायदा न उठायें, तब तक हम कभी अन्दर एक कदम भी नहीं जा सकते। बेशक हमारा असली गुरु वह शब्द या नाम है जो कि हमारे सबके अन्दर है। परन्तु फिर भी हम उस शब्द को अपने अन्दर पकड़ नहीं सकते, जब तक वही शब्द या नाम देह धारण करके अर्थात् मनुष्य के चोले में गुरु के रूप में प्रकट होकर हमारी मदद न करे। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"बानी गुरू गुरू है बानी विच बानी अमृत सारे।
गुरु बानी कहे सेवक जन माने परतख गुरु निस्तारे ।।"

सत्गुरु शब्द है और शब्द ही सत्गुरु है। उस शब्द के अन्दर ही असली अमृत है। सत्गुरु अपने शिष्यों को हमेशा उस शब्द की और ही प्रेरित करते हैं। शिष्य उनके आदेश में चलकर अपने खयाल को शब्द से जोड़ता है। लेकिन मुक्ति केवल देहधारी गुरु ही दे सकता है।

हम मनुष्य हैं इसलिए हम मनुष्य को ही गुरु चाहते हैं, जिससे हम सब कुछ पूछ सकें, बोल सकें, जिससे प्यार कर सकें और जो हमारे अन्दर उस शब्द की धारा को प्रकट कर सके। गुजरे हुए महात्मा या उनकी लिखी पुस्तकें यह काम नहीं कर सकतीं। वे महात्मा पूर्ण थे और जो उनकी संगति में आये उनको वे फायदा पहुँचा गये। जब तक हमने परमात्मा को नहीं देखा हम उससे किस तरह प्यार कर सकते हैं? यह मानना कि हम परमात्मा से प्यार कर रहे हैं, सिर्फ हमारे मन की भूल है। इसी प्रकार जो महात्मा पहले हो चुके हैं उनसे हमारा प्यार करना भी मन की एक झूठी और व्यर्थ की कल्पना है, क्योंकि अब वे परमात्मा के पास पहुँच चुके हैं, इस दुनिया में नहीं हैं, हमारा उनके साथ किसी प्रकार भी सीधा सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता। अब तो कोई जिन्दा देहधारी गुरु मिले तब ही हमारा उसके साथ प्यार पैदा हो सकता है और उसका प्यार ही हमें परमात्मा के प्यार में लगा सकता है।

सच्चे और पूरे गुरु दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे जो सीधे सचखंड से आते हैं और जन्म से ही सन्त होते हैं। दूसरे वे जो शब्द का अभ्यास करके अपने गुरु की दया-मेहर से सचखंड तक पहुँच जाते हैं और अपनी जिन्दगी में हो सन्त बन जाते हैं। जब हम सत्गुरु की शरण प्राप्त करते हैं तो वे हमें नाम देकर बेफिक्र

नहीं हो जाते, बल्कि हमें धुर-धाम पहुँचाने के जिम्मेदार होते हैं। गुरु अर्जुन साहिब फरमाते हैं,"गुरु मेरे संग सदा है नाले।" फिर फरमाते हैं—

"गुरु की दात न मेटे कोई। जिस बखसे तिस तारे सोई॥"

हजरत ईसा कहते हैं, "और मैं उन्हें अनन्त जीवन देता हूँ और वे कभी नष्ट न होंगे और कोई उन्हें मेरे हाथ से छीन न सकेगा।" (जॉन १०:२८)

जिन पर सतगुरु अपनी छाप लगा देते हैं, उनको मृत्यु के बाद यमदूतों के साथ नहीं जाना पड़ता। वे नाम की जो बख्शिश करते हैं, उसे कोई नहीं छीन सकता। एक अन्य स्थान पर हज़रत ईसा ने जोरदार लफ्जों में कहा है, "पृथ्वी और आकाश मिट जायेंगे पर मेरे शब्द कभी नहीं मिट सकते।" (मैथ्यू २४:३५) अर्थात् यह जमीन और आसमान चाहे नष्ट हो जायें, लेकिन मेरा दिया हुआ शब्द कभी व्यर्थ नहीं जा सकता। इसी प्रकार स्वामीजी महाराज फरमाते हैं—

"सन्त डारिया बीज घट धरती जिस जीव के।
को अस समरथ होय, जो जारे उस बीज को॥"

पाँचवीं पातशाही गुरु अर्जुनदेवजी भी फरमाते हैं—

"मेरा गुरु परमेसुर सुखदाई।
पार ब्रहम का नाम दृड़ाए अंतहि होइ सखाई॥"

ऐसे सतगुरु मृत्यु के समय सेवक को खुद लेने आते हैं और यमदूतों के साथ नहीं जाने देते। सतगुरु हमारे सच्चे दोस्त और रक्षक हैं, सिर्फ इस दुनिया में ही नहीं बल्कि मौत के वक्त भी वे ही अपने नूरी स्वरूप में हमारी मदद और रखवाली करते हैं। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"सजन से ही नाल मै चलदियाँ नाल चलंन ।
जित्थे लेखा मंगीऐ तित्थे खड़े दिसंन ।।"

गुरु अर्जुनदेवजी का कथन है—

"नानक कचड़ियाँ सिम्रो तोड़, ढूंड सजन संत पक्किम्राँ ।
म्रोए जीवंदे विछड़हिं, म्रो मोइम्राँ न जाई छोड़ ।।"

दुनिया में हमारे बहुत से रिश्तेदार, दोस्त, मित्र हमसे जीते जी ही अलग हो जाते हैं। आखिर तक तो यदा-कदा ही कोई दोस्त मुश्किल से रहता है। लेकिन, सन्त वे असली दोस्त हैं, जो मृत्यु के समय भी हमें नहीं छोड़ते, बल्कि हमें यमदूतों के पंजों से भी छुड़ाते हैं। ऐसे सतगुरु की शरण में आने के बाद हमारा धर्मराज का हिसाब-किताब खत्म हो जाता है। गुरु साहिब फरमाते हैं—

"धरमराइ दर कागज फाड़े, जन नानक लेखा समझा ।।"

फिर लिखते हैं—

"सिमरत नाम किलबिख सब काटे। धरमराइ के कागद फाटे।"

और

"धरामराइ अब किम्रा करैगो जो फाटिम्रो सगलो लेखा ।।"

बाइबिल में हज़रत ईसा कहते हैं, "धन्य हैं वे जो प्रभु का शब्द सुनते और संभालते हैं।" (ल्यूक ११:२८)

आगे फिर कहते हैं, "जो मेरा शब्द सुनता है......उसका जीवन अनन्त है......वह मृत्यु से पार होकर जीवन में प्रवेश कर चुका है" (जॉन ५:२४)। अर्थात् जिनको मैं उस शब्द से जोड़ देता हूँ वे मौत के पंजे से हमेशा के लिए छूटकर अनन्त जीवन

प्राप्त कर लेते हैं।

ऐसे सन्त दुर्लभ हैं, परन्तु वे संसार में हमेशा मौजूद रहते हैं। हरएक युग में सच्चे जिज्ञासुओं को शब्द या नाम का रास्ता बताने के लिये वे आते रहते हैं। गुरु नानक साहिब लिखते हैं—

"जुग जुग सन्त भले प्रभ तेरे ॥"

यह नहीं कि पूर्ण महात्मा किसी खास समय या काल में ही आते हैं या वे किसी खास कौम या खास मुल्क से बँधे हुए होते हैं। हरएक युग में महात्मा होते आये हैं और वे किसी भी कौम, मजहब या मुल्क में आ सकते हैं। गुरु साहिब फरमाते हैं—

"हर जुगो जुगो जुग जुगो जुगो सद पीड़ी गुर चलंदी ॥"
"जुग जुग पीड़ी चले सतिगुर की, जिन्नी गुरमुख नाम धिआइआ ॥"

एक समय में एक से अधिक महात्मा भी हो सकते हैं। ऐसे महात्मा दुनिया में समाज या जाति पर बोझ बनकर नहीं आते बल्कि अपनी मेहनत की कमाई करके संगत की मुफ्त सेवा करते हैं। गुरु नानक साहिब ने खुद अपने हाथों से खेती की, अपने बाल-बच्चों की परवरिश की और संगत की मुफ्त सेवा की। आप अपनी वाणी में समझाते हैं—

"गुरु पीर सदाए मंगण जाए। ताके मूल न लागो पाए।
घाल खाए कुछ हत्थों दे। नानक राह पछाणे से ॥"

कि अगर कोई गुरु और पीर बनकर अपने शिष्यों और सेवकों से माँगता फिरता है, तो उसके पैरों पर मत्था ही मत टेको। जो महात्मा खुद अपनी मेहनत की कमाई करके अपना जीवन बिताता है और संगत की मुफ्त सेवा करता है, ऐसे महात्मा की खोज करनी चाहिये। हज़रत ईसा भी बाइबिल में कहते हैं, "तुम्हें मुफ्त मिला है, मुफ्त ही दो।" (मेथ्यू १०:८)

कबीर साहब के जीवन के वृत्तान्तों से पता चलता है कि आपने सारी उमर कपड़े बुनकर गुजारा किया, अपने बाल-बच्चों की परवरिश की और साध-संगत की मुफ्त सेवा की, हालांकि शाह बलख बुखारा जैसे आपके सेवक थे जो आपको दुनिया की हर नियामत और आराम दे सकते थे। आप अपनी वाणी में लिखते हैं—

"सिष तो ऐसा चाहिये, गुरु को सरबस देय।
गुरु तो ऐसा चाहिये, सिष का कछू न लेय॥"

फिर फरमाते हैं—

"मर जाऊँ माँगूँ नहीं, अपने तन के काज।
परमारथ के कारने, मोहि न आवे लाज॥"

सन्त-महात्मा हमारा रुपया-पैसा दुनिया के फायदे में लगा देते हैं, ताकि हमारी कमाई नेक और सफल हो सके। परन्तु अपने लिये कभी किसी के आगे हाथ नहीं पसारते। स्वामीजी महाराज भी अपनी वाणी में यही फरमाते हैं—

"गुरु नहीं भूखा तेरे धन का। उन पे धन है भक्ति नाम का॥
पर तेरा उपकार करावें। भूखे प्यासे को दिलवावें॥"

महात्मा रविदास ने सारी उमर जूतियाँ गाँठकर गुजारा किया, हालाँकि राजा पीपा, जो कि एक क्षत्रिय राजा था, आपका सेवक था और मीराबाई भी, जो कि मेवाड की रानी थी, आपकी शिष्या थी। मीराबाई के जीवन-वृत्तान्त में आता है कि उसे बिरादरी वालों ने ताने सुनाये कि तू तो महलों में रानी बनी बैठी है और तेरा गुरु जूतियाँ गांठने का काम करता है। सेवकों के लिये अपने गुरु के बारे में ताना सुनना बड़ा मुश्किल है। उसने एक कीमती हीरा लेकर रविदासजी के पास जाकर अर्ज की कि हे गुरुदेव!

लोग मुझे ताने सुनाते हैं। आप इस हीरे को बेचकर अपने लिये एक अच्छा मकान बनाकर इज्जत की जिन्दगी बसर करें। लेकिन महात्मा रविदास ने समझाया कि बेटी ! मुझे जो कुछ मिला है वह इन जूतियों के गाँठने और इस कुंड के पानी से मिला है। मुझे इस हीरे की कोई जरूरत नहीं।

महात्मा खुद मिसाल बनकर दिखाते हैं कि किस तरह दुनिया में रहते हुए, दुनिया के काम-काज करते हुए मालिक की भक्ति करना है। वे यह नहीं कहते कि घरबार छोड़कर जंगलों-पहाड़ों की ओर चले जाओ और संन्यास आदि धारण कर लो। जंगलों-पहाड़ों में जाकर हमारे अन्दर मालिक से मिलने का कोई शौक और प्यार पैदा नहीं हो जाता, क्योंकि वही इच्छाएँ, वही तृष्णाएँ हमारे अन्दर वहाँ भी दबी रह जाती हैं। जिस समय फिर दुनिया का सामना करना पड़ता है, हमारी वे ही इच्छाएँ हमें उँगलियों पर नचाना शुरू कर देती हैं, बल्कि साधारण मनुष्यों से भी हमारी हालत बुरी और गयी-बीती हो जाती है। हमें दुनिया में किस चीज की जरूरत है ? शरीर को ढकने के लिए और गरमी व सरदी से बचने के लिए कपड़े की जरूरत है, पेट को भोजन की और रहने के लिए किसी कोठरी या मकान की जरूरत है। इन जरूरतों को हम जितना भी चाहें बढ़ा लें या कम कर लें; लेकिन जहाँ भी हम जाते हैं, ये जरूरतें हमारे साथ ही जाती हैं। जंगलों-पहाड़ों में जाने से क्या होता है। हम सफेद कपड़े उतार देते हैं, भगवे पहन लेते हैं। लेकिन कपड़े की जरूरत तो फिर भी महसूस हुई। एक अपनी स्त्री के हाथ का बनाया हुआ भोजन छोड़कर, लोगों के आगे जाकर पेट की खातिर हाथ फैलाना पड़ता है, लेकिन पेट ने खाना तो फिर भी माँगा। अपने घर का सुख और आराम छोड़कर गुफाओं और कन्दराओं का या किसी आश्रम का सहारा लिया। सिर ढकने के लिए किसी न किसी जगह की तो फिर भी जरूरत पड़ी। हमसे उन चीजों में से कोई भी चीज नहीं छूटी, उलटे हम

अपना बोझ समाज पर डाल देते हैं और आलसी बन जाते हैं। लोगों की कई तरह की खुशामदें करनी पड़ती हैं और कई तरह के झूठ-सच अपने पेट की खातिर बोलने पड़ते हैं। महात्मा समझाते हैं कि दुनिया में हमें सूरमा और बहादुर बनकर रहना है। दुनिया में रहते हुए भी दुनिया की गन्दगी और वासनाओं में नहीं फँसना है। गुरु नानक साहिब बड़ी अच्छी मिसाल देकर समझाते हैं—

"जैसे जल महि कंवल निरालम मुरगाई नैसाणे।
सुरत शबद भौ सागर तरीऐ नानक नाम बखाणे॥"

जिस तरह कमल का फूल पानी में पैदा होता है पर पानी से बाहर रहता है, हालाँकि उसकी नाल और जड़ पानी के अन्दर होती है, जिस प्रकार मुर्गाबी (जल-कुक्कुट) पानी के अन्दर रहते हुए भी सूखे परों से उड़ जाती है, इसी तरह हमें भी दुनिया में रहते हुए अन्तर में अपनी सुरत को शब्द के साथ जोड़कर इस भव-सागर से पार होना है। एक मक्खी जो शहद के किनारे पर बैठती है शहद का स्वाद भी ले लेती है और सही-सलामत उड़ भी जाती है। लेकिन अगर वह शहद के बीच में बैठ जाये तो तड़प-तड़प कर अपनी जान दे देती है। दुनिया में हमें इस प्रकार रहना है जिस प्रकार एक विवाहिता लड़की अपने माता-पिता के पास रहती है। वह माता-पिता की सेवा भी करती है, अपनी सखियों-सहेलियों के साथ खेलती और उनसे बातचीत भी करती है और घर का काम-काज भी करती है। लेकिन माता-पिता के घर रहते हुए भी वह अपने पति को कभी नहीं भूलती। उसका मन सदा अपने पति के चरणों में लगा रहता है। इसी प्रकार हमें भी दुनिया में रहते हुए, दुनिया के लेन-देन का हिसाब खत्म करते हुए अपनी लिव उस मालिक की भक्ति और प्यार में लगाए रखना है। अतएव सच्चे महात्मा हमें यही उपदेश देते हैं कि अपने घरबार में रहते हुए, अपने हाथों की मेहनत की कमाई करते हुए मालिक की भक्ति

करो। हमें ऐसे महात्मा की खोज करके उन्हीं से शब्द या नाम का भेद लेना है। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"संतहु गुरुमुख पूरा पाई, नामो पूज कराई ॥"

सच्ची भक्ति और पूजा

गुरु अमरदासजी का कथन है—

"सच्चे सबद सची पत होई ॥ बिन नामे मुकति न पावै कोई ॥
बिन सतिगुरु को नाउ न पाए प्रभु ऐसी बणत बनाई हे ॥"

अर्थात् मालिक ने अपने मिलने के लिए यही कानून बनाया है कि सच्चे शब्द या नाम की कमाई के बगैर हम कभी भी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते और सतगुरु के बिना हमें नाम की कमाई करने के तरीके और साधन का पता ही नहीं लग सकता। हजरत ईसा भी इस ओर इशारा करते हैं, "मैं तुझसे सच कहता हूँ, जब तक मनुष्य दुबारा जन्म नहीं लेता, वह खुदा की बादशाहत नहीं देख सकता" (जान ३:३)। नया जन्म लेने से मतलब उस नाम या शब्द से लगना है, जिसे पाकर इस नाशवान संसार से हमारा सम्बन्ध टूट जाता है और हम अपने परम पिता परमात्मा के घर जाने के हकदार बन जाते हैं। जैसा कि गुरु नानक साहिब ने अपनी वाणी में फरमाया है—

"सतिगुरु कै जनमे गवन[1] मिटाइआ ॥"

एक और स्थान पर हजरत ईसा, फरमाते हैं, "अब उस शब्द के द्वारा जो मैंने तुमसे कहा है, तुम शुद्ध हो" (जान १५:३)। अर्थात मैंने जिस शब्द से तुम्हें जोड़ा है उसने तुम्हें पापों के भार से मुक्त कर दिया है।

---

१. आवागमन

वह मालिक खुद-मुख्तार है, स्वाधीन है, जो चाहे अपने मिलने का तरीका बना सकता है। इसमें किसी का कोई दखल नहीं। जो भक्ति उस परमात्मा को मंजूर है, वह शब्द या नाम की कमाई है। गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"बिन नामे होर पूज न होई, भरम भुली लोकाई ॥"

कि दुनिया व्यर्थ भ्रमों में फँसकर इस चौरासी के जेलखाने में भूली हुई भटकती फिरती है। उस नाम के बगैर तो मुक्ति का कोई और रास्ता ही नहीं है। फिर समझाते हैं—

"नाम विसार चले अन मारग, अंत काल पछताई हे ॥"

नाम की कमाई करने का रास्ता छोड़कर अगर हम किसी और रास्ते पर चलने की कोशिश करते हैं तो अन्त में मृत्यु के समय पछताना पड़ता है कि यों ही अपने कीमती समय को व्यर्थ की बातों में नष्ट कर दिया। आप फिर समझाते हैं—

"बिन नामे दर ढोई नाहीं, ताँ जम करै खुआरी ॥"

शब्द या नाम की कमाई के बगैर मालिक के दरबार में जाने की कभी इजाज़त नहीं मिलती और यमदूतों के हाथों खराब होना पड़ता है। यही स्वामीजी महाराज समझाते हैं—

"गुरु कहें खोलकर भाई। लग शब्द अनाहद जाई ॥
बिन शब्द उपाव न दूजा। काया का छुटे न कूजा ॥"

शब्द या नाम की कमाई के सिवाय और कोई उपाय और तरीका नहीं है जिससे कि हम देह के बन्धनों से छुटकारा प्राप्त कर सकें। बाकी जितने भी साधन जप-तप, पूजा-पाठ, दान-पुण्य वगैरह हैं, सबका फल हमें जरूर मिलता है। लेकिन उनका फल लेने के लिये हमें फिर से देह के बन्धनों में आना पड़ता है। जैसा

कि पहले कहा जा चुका है, हम राजा-महाराजा होकर आ जाते हैं, सेठ-साहूकार बन जाते हैं, जाति, धर्म और देशों का शासन प्राप्त करके आ जाते हैं। ज्यादा से ज्यादा बैकुण्ठों-स्वर्गों तक पहुँच जाते हैं। लेकिन ये भी भोग-योनियाँ हैं, किसी नियत अवधि के लिए ही हैं। उसके बाद हमें फिर इसी चौरासी के जेलखाने में आना पड़ता है। परन्तु नाम की कमाई हमें हमेशा के लिये देह के बन्धनों से मुक्त कर देती है। गुरु नानक साहिब का कथन है—

"सच्चों उरे सभु को, ऊपर सच आचार ॥"

कि इन सब चीजों का फल शब्द की कमाई के फल के नीचे रहता है यानी हमें काल के दायरे में ही रखता है। शब्द की कमाई का फल सबसे ऊँचा है। वह हमें काल के दायरे से पार ले जाता है; क्योंकि वही चीज हमें मन और माया की सीमा से पार ले जा सकती है जो मन और माया की सीमा के परे से आती हो। वह शब्द सचखण्ड से उठता है। काल की सीमा ब्रह्म और त्रिलोकी तक है। इसलिये, हम शब्द को पकड़ कर काल की सीमा से पार चले जाते हैं।

स्वामीजी महाराज फरमाते हैं—

"शब्द कमाई कर हे मीत। शब्द प्रताप काल को जीत ॥
शब्द घाट तू घट में देख। शब्दहि शब्द पीव को पेख ॥
शब्द कर्म की रेख कटावे। शब्द शब्द से जाय मिलावे ॥
शब्द बिना सब झूठा ज्ञान। शब्द बिना सब थोथा ध्यान ॥
शब्द छोड़ मत अरे अजान। राधास्वामी कहे बखान ॥"

गुरु नानक साहिब भी यही कहते हैं,

"हरि नामे तुल्ल न पुजई, सब डिठी ठोक बजाए ॥"

कि हमने अच्छी तरह ठोक-बजाकर देख लिया है कि कोई वस्तु नाम-भक्ति की बराबरी नहीं कर सकती। फिर आप लिखते हैं—

"सूहट पिंजर प्रेम के बोले बोलणहार ।।
सच चुगे अमृत पीए उड़े ताँ एका बार ।।

हमारी आत्मा तोते के समान है और यह शरीर एक पिंजरे के समान है । जिस प्रकार तोता पिंजरे से प्यार करके तरह-तरह की बोलियाँ बोलता है, इसी तरह हमारी आत्मा भी इस शरीर से प्यार लगाये बैठी है । कभी उसके अन्दर बैठकर रोती है, कभी हँसती है, कभी सुख और कभी दुःख महसूस करती है । अगर हमारी आत्मा इस देह का प्यार छोड़ दे और इसके अन्दर परमात्मा ने जो सच या शब्द का भोजन रखा है, उसको ग्रहण करने लगे और उस शब्द रूपी अमृत को पीना शुरू कर दे तो यह हमेशा के लिए इस देह के बन्धनों से आजाद हो जाये। गुरु अर्जुन साहिब एक और बड़ी अच्छी मिसाल देकर समझाते हैं—

"अनिक करम किए बहुतेरे, जो कीजै सो बंधन पैरे ।
कुरुता बीज बीजै नहीं जम्मे, सभ लाहा मूल गवाइदा ।।
कल जुग में कीरतन परधाना, गुरमुख जपै लाइ धिआना ।
आप तरै सगले कुल तारे, हर दरगह पत सिओं जाइंदा ।।"

नाम की कमाई के बगैर जो भी साधन या तरीके हम मुक्ति की प्राप्ति के लिए अपनाते हैं, वे हमें देह के बन्धनों में और ज्यादा फँसा देते हैं । अगर हम धरती में एक बे-मौसम का बीज बोते हैं तो हम कितना भी हल चला लें, अच्छी-से-अच्छी खाद डाल लें और पानी आदि समय पर दें, तो भी वह फसल हमारे घर नहीं आ सकती, हमारी सब मेहनत, बीज और खर्च फिजूल चले जाते हैं । कलियुग में आकर जो मुक्ति प्राप्त करने का असली बीज या तरीका है, वह शब्द या नाम की कमाई है जिसके बारे में हमें सिर्फ पूरे गुरु से ही पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त हो सकती है । स्वामीजी महाराज भी लिखते हैं—

"कलजुग करम धरम नहीं कोई। नाम बिना उद्धार न होई॥"

गुरु रामदास साहिब भी फरमाते हैं—

"कलजुग राम नाम बोहिथा, गुरमुख पार लंघाई॥"

कलियुग में आकर अगर कोई ऊँचे से ऊँचा, श्रेष्ठ से श्रेष्ठ कर्म है तो वह सिर्फ नाम की कमाई है। इस बात को गुरु अमरदास साहिब और भी अच्छी तरह समझाते हैं—

"इस जुग का धरम पढ़ो तुम भाई॥
पूरे गुरु सब सोझी पाई॥
ऐथे अग्गे हरि नाम सखाई॥"

चार युग एक-दूसरे के बाद चक्कर लगा रहे हैं। हरएक युग में हमारे जीवन की परिस्थितियाँ बिल्कुल अलग-अलग होती हैं। सतयुग में हमारी उम्र बहुत लम्बी थी, हमारा स्वास्थ्य भी अच्छा था और हमारा खयाल भी दुनिया में इतना फैला हुआ नहीं था। मामूली से इशारे से हमारा खयाल मालिक की भक्ति की ओर हो जाता था। जैसे-जैसे युग पलटते गये उम्र छोटी होती गई, स्वास्थ्य कमजोर होता गया और खयाल भी दुनिया में पूरी तरह फैल गया। जो साधन हमें सतयुग में काम देते थे, वे अब कलियुग में काम नहीं दे सकते। कलियुग में तो कोई भाग्यशाली मनुष्य ही सत्तर या अस्सी साल गुजार जाता है, स्वास्थ्य भी इतना कमजोर है कि एक डेढ़ घटे भी हम लगातार मालिक की भक्ति एक आसन पर बैठकर नहीं कर सकते और खयाल भी इतना फैला हुआ है कि पाँच मिनट के लिए भी किसी विषय पर विचार करने के लिए हमारा मन पूरी तवज्जह के साथ नहीं टिक सकता। गुरु साहिब समझाते हैं कि अगर हम कलियुग में आकर जिन्दगी के चन्द रोज सुख और

शान्ति से गुजारना चाहते हैं और वापस जाकर परमात्मा से मिलना चाहते हैं तो सिर्फ नाम की कमाई का ही रास्ता है। कलियुग में आकर तो महात्माओं ने बड़ी उदारतापूर्वक नाम का प्रचार किया है।

हमारा मन हमें उस शब्द या नाम की कमाई की ओर जाने ही नहीं देता, बल्कि हमेशा पूजा-पाठ, कर्म-कांड, जप-तप, दान-पुण्य आदि में ही लगाये रखता है। गुरु अमरदास जी फरमाते हैं—

"पूजा करै सभ लोक सन्तहु, मनमुख थाइ न पाई।
सबद मरै मन निरमल सन्तहु, एह पूजा थाइ पाई।"

हम सब दुनिया के जीव अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उस परमात्मा की भक्ति करने की कोशिश जरूर करते हैं, क्योंकि आत्मा का रुझान अपने असल या मूल की ओर होता है। इसी रुझान के फलस्वरूप हम परमात्मा को ढूँढते हैं, लेकिन मन के पीछे लग-कर मालिक की भक्ति करते हैं। यह भक्ति हमें कभी भी हमारे ठिकाने पर नहीं पहुँचाती। हमारा ठिकाना सचखंड है और मन की हद ब्रह्म तक ही रह जाती है। शब्द या नाम की कमाई करने से ही हमारा मन निर्मल होता है। और यह नाम की कमाई ही हमें अपने असली धाम या असली घर सचखंड पहुँचाती है। हर-एक भक्ति हमें परमात्मा से नहीं मिलाती, सिर्फ नाम की कमाई ही मालिक तक ले जाती है। स्वामीजी महाराज समझाते हैं—

"अब यह देह मिली किरपा से। करो भक्ति जो करम दहा॥"

अर्थात् यह मनुष्य का चोला परमात्मा की अपार कृपा से प्राप्त हुआ है। इसमें बैठकर वह भक्ति करो जिससे कर्मों का सिलसिला खत्म हो जाये। वह भक्ति सिर्फ नाम या शब्द की कमाई है। गुरु अमरदासजी फरमाते हैं—

"पूजा करे पर बिध नहिं जाने, दूजें भाई मल लाई।"

हमें असली भक्ति करने के तरीके का पता नहीं लगता, गलत रास्ते पर पड़कर मैल और पापों को और इकट्ठा कर लेते हैं। बाइबिल में यही हज़रत ईसा ने कहा है, "तू पूजा करता है पर नहीं जानता कि क्या कर रहा है।" स्वामीजो महाराज भी इसी प्रकार समझाते हैं—

"फोकट धर्म पकड़कर जूझे। बूझे न शब्द जुगत पारा॥
पानी मथे हाथ कुछ नाहीं। क्षीर मथन आलस भारा॥
जीव अभाग कहूं मैं क्या क्या। बाहर भरमे भौ जारा॥
अंतरमुख जो शब्द कमाई। ता में मन को नहिं गारा॥"

जो मालिक की भक्ति का असली तरीका है अर्थात् शब्द की कमाई है, उसे तो हम पकड़ने की कोशिश नहीं करते, हमेशा बाहर रीति-रिवाजों में ही फँसे और कर्म-कांड में उलझे रहते हैं। इन बातों को स्वामीजी महाराज 'फोकट धर्म' कहकर समझाते हैं। हम छिलकों से प्यार करते हैं, जो उनके अन्दर गूदा या गुर है उसे ग्रहण नहीं करते। स्वामीजी मिसाल देते हैं कि सारी उमर अगर हम पानी बिलोते रहेंगे तो उसमें से कुछ नहीं निकलेगा। लेकिन अगर दूध को मथेंगे तो उसमें से मक्खन प्राप्त कर सकेंगे। इसलिए वे समझाते हैं कि अपने मन को अन्दर शब्द के साथ जोड़ना चाहिये, उससे जुड़कर ही यह निर्मल और पवित्र हो सकता है। गुरु नानक साहिब का कथन है—

"सबद विसारन तिनाँ ठोर न ठांव। भरमी भूले जिऊँ सुंजे घर काँव॥
हलत पलत तिन दोए गवाए दुखे दुख विहावणिआ॥"

जो शब्द या नाम की खोज नहीं करते उनका न तो इस दुनिया में कहीं ठिकाना है और न ही अगली दुनिया में कोई

ठिकाना बनता है। जैसे खाली घर के अन्दर कौआ दिन-भर कूदता फिरता है, परन्तु उसे खाने के लिए कुछ नहीं मिलता, इसी प्रकार हम इस चौरासी के जेलखाने में भटकते फिरते हैं। ऐसे लोगों ने अपने दीन और दुनिया दोनों खराब कर लिये। हज़रत ईसा भी शब्द या नाम के महत्व के बारे में कहते हैं कि जो लोग उससे मुख मोड़ लेते हैं और उसकी निन्दा करते हैं उनका गुनाह न इस दुनिया में माफ हो सकता है न अगली दुनिया में।

'जो कोई भी पवित्र आत्मा (शब्द) के विरोध में कुछ कहेगा उसका गुनाह न तो इस लोक में और न परलोक में बख्शा जायेगा।" (मेथ्यू १२:३२)

जप-तप, पूजा-पाठ, दान-पुण्य, आदि सब का जो भी फल है, वह सब शब्द या नाम की कमाई में आ जाता है, जैसे कि कहावत है, 'हाथी के पाँव में सब का पाँव।' जिस समय हमारी जबान पर दिन-रात उस मालिक का नाम चढ़ा होता है यानी हम उस मालिक के नाम के सुमिरन में लगे होते हैं, तो उससे बड़ा जप और कौन-सा हो सकता है। जब हम अपने आपको उस मालिक के हवाले किये बैठे हैं और उसकी रजा में रह रहे हैं तो इससे बड़ा और तप क्या हो सकता है। जब हम अपने अन्तर में दिन-रात उस शब्द की वाणी को सुन रहे हैं तो इससे बड़ा और पाठ क्या कर सकते हैं। जब गुरुमुखों के स्वरूप को दिन-रात प्यार में अपने साथ-साथ लिए फिरते हैं तो इससे बड़ी और पूजा क्या हो सकती है। जिस समय उस नाम रूपी अमृत को पीकर मन दुनिया से उदास और उचाट हो जाता है तो इससे बड़ा और वैराग्य क्या हो सकता है। न घर-बार छोड़ने की जरूरत है, न बाल-बच्चों को त्यागने की जरूरत है, न ही कहीं बाहर जंगलों-पहाड़ों में भटकने की जरूरत है। हमें संसार में रहते हुए, संसार का कारोबार अपना फर्ज और कर्तव्य समझकर करते हुए अपने अन्दर ही उस शब्द का अभ्यास करना है। सतगुरु से शब्द या नाम की बख्शिश लेकर अपने अन्दर

ही उसका स्वाद प्राप्त करना है। कहीं बाहर भटकनें की जरूरत नहीं।

नाम की कमाई करके हम जन्म-जन्मान्तरों के देह के बंधनों से छुटकारा प्राप्त कर लेते हैं और वापस जाकर परमात्मा से मिल जाते हैं। हमें नाम की कमाई लोगों की मान-बढ़ाई पाने के लिए नहीं करना है, ऋद्धि-सिद्धि और करामातें दिखाने के लिए नहीं करना है। नाम की कमाई हमें मालिक की कृपा और बख्शिश प्राप्त करने के लिए करना है, लोगों को करामातें दिखाकर मालिक के हिस्सेदार बनने के लिए नहीं करना है। इसलिए महात्मा समझाते हैं कि उस नाम की बख्शिश को हमें अपने अन्दर ही हजम करना चाहिये, इस अनमोल पदार्थ को कौड़ियों की तरह बिखेरना नहीं चाहिये। जितना भी हम उस मालिक की बख्शिश को अपने अन्दर हज़म करेंगे, उतनी ही वह हम पर और बख्शिश व मेहर करेगा। कबीर साहिब फरमाते हैं—

"नाम रतन धन पाय कर, गाँठ बांध, ना खोल।
नहीं पटन नहिं पारखी, नहिं गाहक, नहिं मोल॥"

उस नाम रूपी दौलत को प्राप्त करके उसे अपने अन्दर इतना दबाकर रखो कि उसकी खुशबू तक बाहर न जाये, क्योंकि न तो दुनिया में कोई उसका अधिकारी है, न किसी को खोटे और खरे की पहचान है और न ही उसका कोई खरीददार है। लोग तो बेटे-बेटियों के याचक हैं, धन-दौलत के अभिलाषी हैं। वे उस नाम रूपी दौलत की कीमत देने को तैयार नहीं। उसकी कीमत क्या देनी पड़ती है ? अपने आपको ही मालिक के हवाले करना पड़ता है, जिस हालत में भी वह मालिक रखे उसी हालत में रहते हुए नाम की कमाई करनी पड़ती है। कबीर साहिब फिर समझाते हैं—

"सभी रसायन हम करी, नाहिं नाम सम कोय ।
रंचक घट में संचरै, कंचन सब तन होय ।।"

हमने दुनिया के सब रसायनों को देख लिया, मगर नाम के बराबर कोई रसायन नहीं है । उसकी एक रत्ती भी अगर शरीर में रच जाये तो हमारा शरीर सोना हो जाता है, अर्थात् इस शरीर में आने का उद्देश्य पूरा हो जाता है । इसी प्रकार गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"पारखिआँ वथ समाल लई, गुरु सोझी होई ।
नाम पदारथ अमुलु सा गुरुमुखि पावै कोई ।।"

जिनको इस चीज़ की परख और कदर है, वे इसे बहुत सँभाल-सँभालकर रखते हैं । और यह कदर भी सन्तों की संगति में जाकर आती है । अगर हमें कोई कीमती हीरा मिल जाता है तो हम उसे किस तरह सँभाल-सँभालकर रखते हैं । रुई में लपेटकर मजबूत पेटियों में रखते हैं, उसकी चाबी को हमेशा छाती से लगाये रखते हैं, अपने बीवी-बच्चों तक को पता नहीं देते कि वे कहीं उसे खो न दें । यह एक मामूली दुनिया की चीज़ है, जिसकी कीमत लगाई जा सकती है । लेकिन जिस नाम की कोई कीमत ही नहीं लगाई जा सकती, जिसे महात्मा अमूल्य और अमोलक कहते हैं, जिसे पाकर हम खुद मालिक ही बन जाते हैं, हमें उसकी कितनी सँभाल करनी चाहिये इसका अन्दाजा आप खुद ही लगा सकते हैं । हज़रत ईसा कहते हैं, "पवित्र वस्तु कुत्तों को न दो, और न अपने मोतियों को सूअरों के सामने डालो । ऐसा न हो कि वे उन्हें पैरों तले रौंद डालें और पलटकर तुम पर हमला कर बैठें ।" (मेथ्यू ७:६) ।

अर्थात् उस दौलत का ग्राहक साधारण तौर पर दुनिया में नहीं है, उस बहुमूल्य मोती को जानवरों के आगे मत डालो, वे उसकी

कदर नहीं जानते ।

स्वामीजी महाराज फरमाते हैं—

"प्रीत प्रतीत गुरु की करना । नाम रसायन घट में जरना ।।"

जिस प्रकार रसायन हमारे शरीर के अन्दर जाकर रच जाता है और शरीर की सब बीमारियाँ दूर कर देता है इसी प्रकार हमको अपने अन्दर नाम को रचाना और हज़म करना है । हमें नाम की कमाई हमेशा परमात्मा के ग्राहक बनकर करना है, परमात्मा से मिलने के लिए करना है । बाल-बच्चों का प्यार प्राप्त करने के लिये नहीं करना है और न ही कोई दुनियावी यश या अधिकार प्राप्त करने के लिए करना है । जितना सच्चा प्यार और इश्क लेकर हम उस मालिक को चाहते हैं उतनी ही वह हम पर अपनी दया-मेहर की बख्शिश करता है । जिस तरह पपीहा स्वाति की बूँद के लिए तड़पता है, दिन-रात उसी की रट लगाये रहता है, उसी तरह हमारे अन्दर मालिक से मिलने की व उसके दर्शन करने की तड़प होनी चाहिये । हमें यह सोचकर मालिक की भक्ति नहीं करना चाहिये कि अगर ऐसा नहीं करेंगे तो हमारे कारोबार में घाटा पड़ जायेगा, धन-दौलत में कमी आ जायेगी या दुनिया में मान-सम्मान खो बैठेंगे या और कोई इसी प्रकार का दुनियावी नुकसान हो जायेगा । यह मालिक की भक्ति करने का एक बहुत तुच्छ अथवा घटिया तरीका है । हम मालिक की भक्ति इसलिए करते हैं कि हमारे अन्दर उससे मिलने का सच्चा इश्क और सच्चा प्यार है । दुनियावी लाभ के लिए मालिक की भक्ति करना ऐसा ही है जैसे लोग अक्सर साँप की पूजा करते हैं । वे साँप की भक्ति इसलिए नहीं करते कि उनको साँप से प्यार है । वे तो, साँप के दंश और जहर से बचने के लिए उसकी भक्ति करते हैं । वास्तव में धर्म की बुनियाद प्रेम है, न कि डर । इसलिये हमें अपने अन्दर मालिक का सच्चा इश्क और प्यार पैदा करना चाहिये ।

सांसारिक इच्छाएँ

तुलसी साहिब उपदेश देते हैं—

"दिल का हुजरा साफ कर, जाना के आने के लिये।
ध्यान गैरों का उठा उसके बिठाने के लिये।"

दिल तो हमारा दुनिया के पदार्थों और शक्लों के लिए भटकता है, मिलना हम मालिक से चाहते हैं। ये दोनों बातें कैसे हो सकती हैं। मन तो एक ही है। उसे चाहे दुनिया के प्यार में लगा लें चाहे मालिक की भक्ति में। अगर दुनिया में हमारा काई मामूली-सा रिश्तेदार या प्यारा हमसे कहीं दूर चला जाता है, हमसे बिछुड़ जाता है, तो हम उसकी याद में किस तरह तड़पते हैं, सारी रात जागते और आँसू बहाते रहते हैं। हमने कभी मालिक के विछोह में एक रात भी जागकर काटी है ? हमारी आँखों में उस मालिक की याद में एक आँसू भी आया है ? हम अपने बच्चे को बाहर खेलने के लिये आया के साथ भेज देते हैं। आया तरह-तरह से उसका मन बहलाने की कोशिश करती है, कभी उसे मीठी-मीठी कहानियाँ सुनाती है, कभी मिठाई देती है, कभी खिलौनों से दिल बहलाती है। लेकिन फिर भी अगर बच्चा माता-पिता के लिए रोना शुरू कर देता है और आया के किसी भी खिलौने से अपने मन को नहीं बहलाता, तो फिर माता-पिता भी उसकी तड़प बर्दाश्त नहीं कर सकते, फौरन जाकर बच्चे को हृदय से लगा लेते हैं। इसी प्रकार, जब तक हम उस मालिक की रचना के साथ ही मोह और प्यार किये बैठे हैं, अपने मन को इसी में उलझाये बैठे हैं, हम इस रचना का ही हिस्सा बने बैठे हैं। जब इस रचना से अपने प्यार को निकाल कर पूरी तरह से मालिक की ओर लगा देते हैं तो वह भी दया-मेहर करके हमें अपने साथ ही मिला लेता है।

गुरु अमरदास साहिब फरमाते हैं—

"हरि का गाहक होवै सो लए पाए रतन वीचारा ॥"

जो मलिक के ग्राहक या प्रेमी बनकर उसकी भक्ति करते हैं वे मालिक से मालिक को ही पा लेते हैं। इसलिये हमें दुनिया की इच्छाओं और तृष्णाओं को छोड़कर उस परमात्मा की भक्ति करना चाहिए। पलटू साहिब समझाते हैं—

"नाम नाम सब कहत हैं नाम न पाया कोय।
नाम न पाया कोय नाम की गति है न्यारी।
वही शखस को मिले जिन्होंने आसा मारी।"

नाम रूपी दौलत या धन को पाना इतना आसान नहीं जितना कि लोग समझते हैं। वही शख्स प्राप्त कर सकता है जो अपने अन्दर से कामनाओं और तृष्णाओं को निकाल देता है। तुलसी साहिब का कथन है—

"एक दिल लाखों तमन्ना उस पै और ज्यादा हवस।
फिर ठिकाना है कहाँ उसके टिकाने के लिये।"

अर्थात् हमारा मन तो एक है और हजारों लाखों इच्छाएँ दिन रात हम करते रहते हैं। पिछली इच्छाएँ और तृष्णाएँ पूरी नहीं होती हैं कि मन और नई इच्छाएँ पैदा करना शुरू कर देता है। जो इच्छाएँ हमारी मरजी के अनुसार पूरी नहीं होतीं, वे हमारे लिये दुःख का कारण बन जाती हैं। जब हमारे मन की यह हालत है तो परमात्मा हमारे अन्दर आकर कैसे बिराज सकता है। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"देंदा दे लैंदे थक पाहि ॥ जुगा जुगन्तरि खाही खाहि ॥"

कि परमात्मा देते-देते कभी नहीं थकता, हम दुनिया के जीव लेते-लेते थक जाते हैं। मन जो-जो इच्छाएँ करता है उनको पूरी

करने के लिये परमात्मा हमें फिर जन्म दे देता है। हम और इच्छाएँ और तृष्णाएँ पैदा करते हैं। मालिक फिर जन्म दे देता है और उस जामे में जन्म देता है जिसमें जाकर उन इच्छाओं को अच्छी तरह पूरा किया जा सके। जिस समय हम उन इच्छाओं से तंग आकर परमात्मा से परमात्मा को माँगते हैं तो फिर परमात्मा हमें अपने साथ मिला लेता है। फिर फरमाते हैं—

"आसाँ परबत जेडीयाँ मौत तनावाँ हेठ।"

हमारी इच्छाएँ और तृष्णाएँ तो शायद हिमालय पर्वत से भी बड़ी हैं। अगर परमात्मा हजारों साल की भी उमर दे तो भी शायद उनको पूरा न कर सकें। लेकिन मौत हमारे सिरहाने खड़ी है, पता नहीं जिन्दगी के चन्द और साल मिलने वाले हैं या नहीं और मौत किस वक्त आ जाये—

"जीव सब लोभ में भूले। काल से कोई नहीं बचना ॥
तृष्णा अग्नि जग जारा। पडा सब जीव को तपना ॥
नहीं कोई राह बचने की। जलें सब नर्क की अगिना ॥
जलेंगे आग में निस दिन। बहुरि भोगें जनम मरना ॥
भटकते वे फिरें खानी। नहीं कुछ ठीक उन लगना ॥
कहूँ क्या दुक्ख वह भोगें। कहन में आ नहीं सकना ॥"

(स्वामीजी महाराज)

हम सब दुनिया के जीव लोभ और लालच में फँसे हुए हैं और अपनी मौत को भी भूले बैठे हैं। हौमैं या मैं-मेरी के प्रभाव में आकर कई प्रकार के कर्म करते हैं, कई प्रकार की इच्छाएँ और तृष्णाएँ पैदा करते हैं। वे पूरी नहीं होतीं, हम तृष्णा की अग्नि में जलते हैं और उन्हें पूरी करने की कोशिश करते हैं, फलस्वरूप मौत के बाद नरकों की आग में जलना पड़ता है। ये इच्छाएँ हमें फिर खींचकर चौरासी के जेलखाने में ले आती हैं। और जो जो दुख और मुसीबतें उन जामों

में जाकर हमें भुगतनी पड़ती हैं उनका वर्णन ही नहीं किया जा सकता। इसलिये महात्मा हमें समझाते हैं कि हमेशा मालिक की मौज, मालिक के 'भाणे' और उसके हुक्म में रहना चाहिये। मालिक के भाणे में रहने का मतलब है कि मन में कोई इच्छा और तृष्णा नहीं उठानी चाहिए, जो कुछ परमात्मा बख्शे, उसकी इच्छा समझकर स्वीकार करना चाहिये। सन्त नामदेवजी का कथन है—

जौ राज देहि ते कवन बड़ाई। जौ भीख मंगावहि ते किआ घटि जाई॥

गुरु अर्जुनदेवजी कहते हैं—

"जे तखति वैसालहि तउ दास तुम्हारे, घास बढावहि केतक बोला॥"

हे परमात्मा! अगर मुझे दुनिया का राज-पाट भी दे देगा तो भी मुझे तेरी ही महिमा गाना है, तेरी ही भक्ति करना है। अगर मुझे दर-दर ठोकरें खानी पड़ेंगी तो मुझे कौन सा अपने दाता का दरवाजा छोड़ जाना है। जिस प्रकार एक समुद्री जहाज़ के पक्षी को जहाज के अलावा और कोई ठिकाना नहीं होता, इसी प्रकार हमारी आत्मा को भी परमात्मा के सिवाय और कोई ठिकाना नहीं है।

यह बात ध्यानपूर्वक विचार करने की है कि ये इच्छाएँ और तृष्णाएँ कौन पैदा करता है? ये सब हमारा मन पैदा करता है। और हम पूरी किससे करवाना चाहते हैं? परमात्मा से। हम मन को कभी समझाने की कोशिश नहीं करते कि तू मालिक की मरजी के अनुसार अपने आपको ढालने की कोशिश कर, उसके हुक्म और उसकी मौज में रह। उलटे दिन-रात परमात्मा को समझाने की कोशिश करते हैं कि तू हमारे मन की मरजी के अनुसार चलने की कोशिश कर। भक्ति हम परमात्मा की कर रहे हैं या मन की? स्वामीजी महाराज भी यही समझाते हैं—

"गुरु की मौज रहो तुम धार। गुरु की रजा संभालो यार ।।
गुरु जो करें सो हितकर जान। गुरु जो कहें सो चित धर मान ।।"

गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"हरि साचे भावै सा पूजा होवै भाणा मन्न वसाई ।।"

सन्तों ही को मालिक की भक्ति और पुजा का ढंग मालूम है, क्योंकि वे भाणें में रहकर ही मालिक की भक्ति करते हैं। फिर फरमाते हैं—

"भाणे ते सभ सुख पावै संतहु, अंते नाम सखाई ।।"

कि भाण में ही सुख व शान्ति है और अन्त में मालिक हमारी सहायता करता है। हजरत ईसा भी यही कहते हैं, "मैं अपनी इच्छा नहीं बल्कि अपने पिता की इच्छा चाहता हूँ जिसनें कि मुझे भेजा है।" (जॉन ५:३०) एक अन्य स्थान पर कहते हैं, "पुत्र स्वयं कुछ नहीं कर सकता, जो पिता को करते देखता है वही करता है।"
(जान ५:१६)

एक महात्मा फरमाते हैं—

"जिसको कछु न चाहिए वही शाहंशाह ।।"

जिसको किसी भी चीज की जरूरत नहीं है, जो हमेशा मालिक के हुक्म में ही रहता है, उससे बड़ा शाहंशाह कौन हो सकता है।

मुसलमानों में भी दो प्रकार के फकीर होते हैं। एक अहले दुआ[१] और दूसरे अहले-रज़ा[२]। अहले-रज़ा का पद अहले-दुआ से कहीं

---

१. अहले-दुआ—जो फकीर मालिक से दुआ माँगने या प्रार्थना करने में विश्वास रखते हैं।

२. अहले-रज़ा—जो मालिक की रज़ा या इच्छा में प्रसन्न रहते हैं और उससे कुछ माँगते नहीं।

ऊँचा है। इसलिये हमें मालिक के भाणे, मालिक की मौज में रहते हुए ही नाम की कमाई करना चाहिये।

मनुष्य-जन्म का उद्देश्य

परमात्मा ने इस सृष्टि की रचना करके उसे चौरासी लाख योनियों में बाँटा है। ऋषि-मुनियों ने इन चौरासी लाख प्रकार की योनियों का इस प्रकार हिसाब लगाया है—

तीस लाख प्रकार के वृक्ष, पेड-पौधे, सत्ताईस लाख प्रकार के कीड़े-मकौड़े, चौदह लाख तरह के पक्षी, नौं लाख प्रकार के पानी के जानवर और चार लाख प्रकार के पशु, जिन्न, भूत-प्रेत, देवी-देवता, मनुष्य।

हम अपने कर्मों के अनुसार इस चौरासी के जेलखाने में फँसे हुए हैं, हमारी आत्मा परमात्मा से मिलकर ही इस जेलखाने से निकल सकती है और परमात्मा हमें यह मनुष्य-चोला केवल इसीलिये प्रदान करता है कि हम उसकी भक्ति करके देह के बन्धनों से छुटकारा प्राप्त कर सकें। अगर मनुष्य के चोले में आने का कोई लाभ है तो सिर्फ यही है। इस चोले को यह फख्र या गौरव प्राप्त है कि इसमें बैठकर परमात्मा से मिलाप किया जा सकता है। गुरु अर्जुनदेवजी समझाते हैं—

"लख चौरासी जून सबाई। मानस को प्रभ दई वडिआई ।।
इस पौड़ी ते जो नर चूकै, सो आइ जाइ दुख पाइंदा ।।"

परमात्मा ने मनुष्य के जामे को सबसे ऊँचा रखा है। यह इस सीढ़ी का आखरी डण्डा है। अगर कोशिश करते हैं तो मालिक से मिल जाते हैं, अगर पैर फिसलता है तो नीचे फिर चौरासी के जेल खाने में आ जाते हैं। गुरु अर्जुनदेवजी फिर समझाते हैं—

"कई जनम भए कीट पतंगा। कई जनम गज मीन कुरंगा ।।

कई जनम पंखी सरप होइग्रो। कई जनम हैवर बिरख जोइग्रो ।।
मिल जगदीस मिलन की बरीग्रा। चिरंकाल इह देह संजरिग्रा ।।"

कई जन्म कीड़ों-पतंगों के पाये, कई जन्म हाथी मछली ग्रौर हिरणों के पाये, कई जन्म पक्षियों ग्रौर साँपों के मिले ग्रौर कई जन्म घोड़ों, पशुग्रों ग्रौर पेड़ों-पौधों के पाये। चिर-काल के बाद परमात्मा ने ग्रपनी भक्ति के लिये ग्रब यह मनुष्य का जन्म बख्शा है। हमें इससे पूरा फायदा उठाना चाहिये। मौलाना रूम फरमाते हैं—

"हमचो सब्ज़ा बारहा रोईदा ग्रम,
हफ्तो सद हफ्ताद कालिब दीदा ग्रम।"[1]

एक ग्रौर फकीर लिखते हैं—

"गाहे नखल दर बागहा—गाहे सपर बर शाखहा।"

कि कई बार मैं घास ग्रौर सब्जी की तरह पैदा हुग्रा हूँ ग्रौर सैकड़ों शरीर मैंने देखे हैं। कभी बाग में दरख्त बना हूँ, कभी दरख्तों पर फल बनाकर लगा हूँ।

इसलिये ऋषियों ने मनुष्य-देह का नर-नारायणी देह कहकर वर्णन किया है, मुसलमान फ़कीर इसे ग्रशरफ़-उल-मख्लूकात कहते हैं ग्रौर यहूदियों का खयाल है कि परमात्मा ने हमें ग्रपनी खुद की शक्ल पर बनाया है। कबीर साहिब भी यही समझाते हैं—

"कबीर मानस जनम दुर्लभ है मिले न बारंबार ।।
जिउँ बन फल पाके भुइँ गिरहि बहुरि न लागहि डार ।।"

जिस तरह वृक्ष से फल पक कर नीचे गिरता है तो वह फिर वृक्ष से वापस नहीं जुड़ सकता, इसी तरह ग्रगर हम मनुष्य के जन्म को

---

१. अर्थात् वनस्पति की तरह मैं कई बार पैदा हुआ हूँ और सात सौ सत्तर शरीर मैंने देखे हैं।

अब व्यर्थ गवाँ बैठेंगे तो फिर यह अवसर बार-बार नहीं मिलेगा। स्वामीजी महाराज भी यही उपदेश देते हैं—

"'मिली नर देह यह तुमको। बनाओ काज कुछ अपना॥
पचो मत आय इस जग में। जानियो रैन का सुपना॥
देह और ग्रेह सब झूठा। भरम में काहे को खपना॥"

यह इन्सान का जामा परमात्मा ने हमें अपना काम करने के लिये बख्शा है। अपना काम वही है जो हमें वापस ले जाकर परमात्मा से मिलाता है। वह काम परमात्मा की भक्ति है। यह दुनिया एक रात के सपने की तरह है। इसकी कोई असलियत नहीं है। इसे देखकर इसके मोह में नहीं फँसना चाहिये। हमारी जमीन-जायदाद, धन-दौलत, रिश्तेदार और यहाँ तक कि हमारा शरीर भी एक दिन हमारा साथ छोड़ देगा। इसलिये आप उपदेश देते हैं कि इस अमूल्य अवसर से लाभ उठाओ। बाल-बच्चे, दुनिया का खाना-पीना, ऐशो-इशरत आदि सब हमें पिछले जन्मों में भी मिलते आये हैं। अगर कोई ऐसी चीज है जो हम पहले नहीं कर सके और केवल अब कर सकते हैं, तो वह परमात्मा की भक्ति है। लेकिन जिस उद्देश्य और ध्येय की पूर्ति के लिये परमात्मा ने यह मौका बख्शा है, उसे हम इस देह में बैठकर बिलकुल भूल जाते हैं। विषयों-विकारों, शराबों-कबाबों, कौमों, मज़हबों और मुल्कों के झगड़ों और इन्द्रियों के भोगों से हमें फुरसत ही नहीं मिलती। हम समझते हैं 'बाबर ब-ऐश कोस के आलम दोबारा नेस्त' कि मनुष्य का जामा शायद फिर न मिले, अब खूब ऐश कर लें। इस प्रकार हम इस सुनहरी मौके को मुफ्त हाथ से खो बैठते हैं। हम इन्द्रियों के भोगों में इतने फँस जाते हैं कि अपनी मौत को भी भूल जाते हैं। रोज देखते हैं कि हमारे साथी हमारा साथ छोड़ें जा रहे हैं, बल्कि हम खुद उनको श्मशान भूमि में छोड़ कर आते हैं और अपनी आँखों से देखते हैं कि दुनिया की कोई चीज़ उनके साथ नहीं जा रही है। लेकिन हम मन में हमेशा यही

सोचते हैं कि मौत शायद औरों के लिये है, हमारे लिये नहीं। गुरु नानक साहिब हमारी हालत का इस प्रकार वर्णन करते हैं—

"धंधे धावत जग बाँधिआ ना बूझै वीचार ॥
जंमण मरण विसारिआ मनमुख मुगध गंवार ॥"

हम दुनिया के जीव हमेशा, दिन-रात पेट के धन्धों में भटकते फिरते हैं और उस ध्येय के बारे में कभी नहीं सोचते जिसके लिये मालिक ने हमें यहाँ भेजा है। हमारे अपने घर में आग लगी हुई है और हमें लोगों की आग बुझाने की फिकर लगी हुई है। अपना घर लूटा जा रहा है, हम दूसरों के घरों की चौकीदारी कर रहे हैं। हम अपना बोझ उठा नहीं सकते, पराये गधे बने बैठे हैं। अपने आपको भी धोखा दे रहे हैं और दुनिया को भी धोखा दे रहे हैं। हम कितने मनमुख, नासमझ और गँवार हैं कि अपने जन्म-मरण को भी भूले बैठे हैं। स्वामीजी महाराज समझाते हैं—

"कहूँ क्या काल जग मारा। जीव सब घेर भरमाई ॥
नहीं कोई मौत से डरता। खौफ जम का नहीं लाई ॥"

यही कबीर साहिब का कथन है—

"क्या लेकर जनम लियो है, क्या लेकर चले जाओगे।
मुट्ठी बाँध कर जनम लिया है, हाथ पसारे जाओगे।
यह तन है कागज की पुड़िया, बूँद पड़त गल जाओगे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, इक नाम बिना पछताओगे।"

आप समझाते हैं कि दुनिया में हम खाली हाथ ही पैदा हुए हैं और खाली हाथ ही यहाँ से चले जायेंगे। न कोई आज तक यहाँ कुछ साथ लेकर आया है और न कभी कोई चीज़ अपने साथ ले जा सकता है। हमारा यह शरीर भी कागज की पुड़िया के समान है। कागज की पुड़िया पर जरा-सा पानी गिरे तो वह गल जाती है। इसी तरह हमारे

इस शरीर को भी मौत के बाद अग्नि या मिट्टी के सुपुर्द हो जाना है। यदि मालिक की भक्ति नहीं करेंगे तो आखिर मौत के समय पछताना पड़ेगा। अगर यह दुनिया की धन-दौलत किसी के साथ जाती होती तो दुनिया के लोग अब तक उसे साथ ले गये होते और हमारे हिस्से में शायद कुछ भी न आता। यह तो हमें इसीलिए मिली है कि इसने कभी किसी का साथ नहीं दिया। महमूद गज़नवी ने हिन्दुस्तान पर सत्रह हमले किये और बहुत सा सोना-चाँदी, हीरे-जवाहिरात यहाँ से लूटकर ले गया। उनको प्राप्त करने के लिये उसने कितने गरीबों का खून किया, कितनी औरतों को विधवा और बच्चों को अनाथ किया। जब उसकी मौत का समय आया तो उसने अपने अनुचरों को हुक्म दिया कि जो कुछ भी मैं हिन्दुस्तान से लूट-कर लाया हूँ उसकी एक खेमे में लगाकर दिखाओ। जब सारी दौलत को नज़र भर कर देखा तो उसकी आँखों में आँसू भर आये। एक ठंडी आह भर कर उसने सोचा कि जिस दौलत को हासिल करने के लिए इतने जुल्म और अत्याचार किये, आज उसमें से मेरे साथ कोई भी चीज़ नहीं जा रही है। उसने हुक्म दिया कि मौत के बाद मेरे हाथ कफन से बाहर निकाल दिये जायें ताकि लोग देखें कि मैं खाली हाथ जा रहा हूँ और मेरी जिन्दगी से सबक लें।

जो चीजें यहीं रह जाने वाली हैं उनके साथ हम कितना प्यार करते हैं। उनको प्राप्त करने के लिये दिन-रात भटकते फिरते हैं। जो पापों के किए बिना प्राप्त नहीं होती और मरने पर साथ नहीं जाती उस पर हम जान देते हैं और जो चीज़ वास्तव में हमारी अपनी है और जिसे हमें अपनी बनाना चाहिये, उसके बारे में कभी नहीं सोचते। हज़रत ईसा भी यही कहते हैं, "नाशवान पदार्थों के लिए मेहनत न करो, बल्कि उस पदार्थ के लिए मेहनत करो जो अनन्त जीवन तक रहेगा, जो मनुष्य का पुत्र तुम्हें देगा, क्योंकि पिता परमेश्वर ने उस पर उसके (पुत्र के) लिए मुहर लगाई है।" (जॉन ६:२७)

अर्थात् दुनिया की नाशवान धन-दौलत और पदार्थों को प्राप्त

करने की कोशिश न करो, बल्कि उस नाम की दौलत को प्राप्त करो जो कभी नष्ट नहीं होती। जो दौलत अर्थात् नाम मैं तुमको दूँगा उस पर मेरे पिता ने मुहर लगाई हुई है। वह कभी नाश को प्राप्त नहीं होती, क्योंकि मैं उसे मालिक की ओर से तुम्हें दूँगा। स्वामी जी महाराज समझाते हैं—

"भटक भटक नर देही पाई। इन्द्री मन मिल यहाँ मारा ॥"

बडी मुश्किल से हमें यह मनुष्य का जामा मिला है। लेकिन यहाँ इस जामे में आकर मन के अधीन होकर हम इन्द्रियों के भोगों में फँसे बैठे हैं। जितना भी हमारा दुनिया से ताल्लुक या सम्बन्ध है सब हमारे शरीर के ज़रिए ही है। जब तक हम शरीर में बैठे हैं हमें ये यार-दोस्त, रिश्तेदार, भाई-बहिन और दुनिया की धन-दौलत, कौम, मुल्क वगैरह सब अपने ही नजर आते हैं या कम से कम हम उन्हें अपना बनाने की कोशिश जरूर करते हैं। जिस समय शरीर से हमारा साथ छूट जाता है, इन सब चीजों से भी सम्बन्ध टूट जाता है। हमें चाहिए कि जब तक परमात्मा ने इस शरीर में बैठने का मौका दिया है, इससे काम ले लें। इसमें बैठकर न तो इसे इतना दुख देना है कि मालिक की भक्ति ही न हो सके और न ही इसे इतने सुख और आराम में रखना है कि हमारा ख़याल ऐशो-इशरत की ओर चला जाये। मालिक की भक्ति ही हमारा असली काम है और हमें वही इससे करवाना है। स्वामीजी महाराज का कथन है—

"धाम अपने चलो भाई। पराये देश क्यों रहना ॥
काम अपना करो जाई। पराये काम नहीं फँसना ॥
नाम गुरु का सम्हाले चल। यही है दाम गँठ बँधना ॥
जगत का रंग सब मैला। धुला ले मान यह कहना ॥"

हमारा यह शरीर काल का पिंजरा है, किराये का मकान है। जितने साँस मालिक ने हमें बख़्शे हैं उनको भुगतने के बाद इसे यहीं

छोड़ जायेंगे। यह शरीर कभी किसी का साथ नहीं देता। बड़े-बड़े राजा, महाराजा, बादशाह, सुल्तान, शासक, तानाशाह, जिनसे दुनिया थर-थर काँपती थी, आज उनकी कब्रों को हम किस तरह तिरस्कार भरी दृष्टि से देखते हैं। कभी हमारी कब्रों को भी लोग इसी तरह से देखेंगे। लोगों की हड्डियाँ हमारे पैरों के नीचे आकर रौंदी जा रही हैं, किसी दिन हमारी हड्डियाँ भी औरों के पैरों के नीचे आकर रौंदी जायेंगी। लोगों की खाक उड़कर आज हमारी आँखों में गिरती है, किसी दिन लोगों की आँखों में हमारी खाक उड़कर गिरेगी। इसलिए महात्मा हमें बेसुधी की नींद से सचेत करते हैं कि उस समय को अपनी आँखों के सामने रखो, जब कोई भी चीज तुम्हारी मदद नहीं करेगी। यह बहिन-भाई, रिश्तेदार, मित्र, परिजन सब हमारे आसपास ही बैठे रह जाते हैं, उन्हें यह भी पता नहीं लगता कि मौत के फ़रिश्ते किस समय और किस रास्ते से आकर हमें पकड़ ले जाते हैं। हमारे रिश्तेदार और सगे-सम्बन्धी रोने-धोने के सिवाय और क्या कर सकते हैं। और वे हमारी क्या मदद कर सकते हैं! उन सबके साथ हमारा लेने-देने का सम्बन्ध है, गरज का प्यार है, स्वार्थ का लगाव है। कोई पत्नी बनकर आ गई, कोई पति और बाल-बच्चे बनकर आ गये। उनसे हमारा जो भी हिसाब-किताब होता है, उसके पूरे हो जाने पर कभी वे हमें छोड़ कर चले जाते हैं, और कभी हम उनको छोड़कर चल देते हैं। जिस तरह एक स्टेज या रंग मंच पर हरएक अभिनेता अपना-अपना पार्ट अदा करता है, कोई राजा का, कोई रानी का, कोई किसी दुष्ट पात्र का, इसी तरह यह दुनिया भी एक बहुत बड़ी स्टेज है और हम सब दुनिया के लोग यहाँ अपने-अपने कर्मों के अनुसार अपना-अपना पार्ट अदा कर रहे हैं। असल में हमारा किसी के साथ कोई रिश्ता या सम्बन्ध नहीं है। जिस तरह नाटक के समाप्त हो जाने पर, रंगमंच से उतरने के बाद न कोई राजा होता है, न कोई रानी, इसी तरह इस देह को छोड़ने के बाद हमारा सम्बन्ध भी किसी से नहीं रहता।

जिस समय किसी को मौत आती है, उसके रिश्तेदार रोते हैं लेकिन जिस जगह जाकर वह फिर जन्म लेता है, वहाँ खुशियाँ मनाई जाती हैं। आज जबकि हम अपने पिछले जन्मों के रिश्तेदारों को बिलकुल भूले बैठे हैं तो जिनके लिए हम आज भटकते फिरते हैं, तरसते और तड़पते हैं, उनको अगले जन्मों में क्या याद रख लेंगे। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"मात पिता माइआ देह सि रोगी, रोगी कुटंब संजोगी।"

कि माता-पिता को भी हमारा साथ छोड़ देना है। जो कुछ भी हम दुनिया में देख रहे हैं इसे भी हमारे साथ नहीं जाना है। हमारे रिश्तेदार भी रोगी हैं, अर्थात् नाशवान हैं। यहाँ तक कि जिस शरीर में हम बैठे हुए हैं, जिससे इतना प्यार रखते हैं और जिसके बनाव-शृंगार में हम क्या-क्या नहीं करते, वह भी यहीं रह जाता है। स्वामीजी महाराज समझाते हैं—

"धन दारा सुत नाती कहियन। यह नहिं आवें काम॥
स्वाँस दुधारा नित ही जारी। इक दिन खाली चाम॥
मशक समान जान यह देही। बहती आठों जाम॥"

कोई भी रिश्तेदार मौत के समय काम नहीं आता। जिस प्रकार एक तालाब में कितना भी पानी क्यों न भरा हो, उसमें एक नल लगाकर खोल दें तो पूरा तालाब खाली हो जाता है। इसी प्रकार हमारा यह शरीर साँसों का भंडार है। जब तक हमें साँस आ रही है, हम किस तरह इस दुनिया में एक-दूसरे के लिए भाग-दौड़ कर रहे हैं। दुनिया में अपने पेट के लिये और लोगों के लिये हम क्या नहीं करते। परन्तु हम उस समय को भूल जाते हैं जिस समय यह साँसों का भंडार समाप्त हो जायेगा। लोग हमारी मौत पर तार और टेलीफोन करेंगे, सगे-सम्बन्धी इकट्ठे होकर इस शरीर को, जिससे हमें इतना प्यार था, या तो अग्नि के सुपुर्द कर देंगे या

मिट्टी में दफना देंगे। स्वामीजी महाराज एक और अच्छा उदाहरण देकर समझाते हैं कि जब तक एक चमड़े की मशक में हवा भरी रहती है, वह पानी के ऊपर तैरती रहती है, हम भी उसका सहारा लेकर पानी पर तैरते हैं। लेकिन जब उस मशक से हवा निकल जाती है तो वह पानी की तह में बैठ जाती है और जो उसका सहारा लेता है वह भी गोते खाने लग जाता है। इसी तरह जब तक हमारे शरीर के अन्दर साँस आ रही है, इस दुनिया के काम-काज करते हैं और लोग भी हमारा आसरा लेकर अपना वक्त गुजार रहे हैं। परन्तु जब इस मशक अर्थात् शरीर से हवा निकल जाती है तो यह शरीर भी निस्सार हो जाता है और जो इसका आसरा लेकर वक्त काट रहे हैं वे भी रोना-पीटना शुरू कर देते हैं और घबरा जाते हैं। महात्माओं के समझाने का सिर्फ इतना ही मतलब है कि हम उस मौत के वक्त को अपनी आँखों के सामने रखें, उससे पहले-पहले अपना रूहानी सफर तय कर लें और मंजिले-मक्सूद पर पहुँच जायें। स्वामीजी महाराज समझाते हैं—

"कुटुम्ब परिवार मतलब का। बिना धन पास नहिं आई ।।"

हमारे जो भी रिश्तेदार, यार-दोस्त हैं ये सब गरज और स्वार्थ के साथी हैं। इनके मोह और प्यार में फँसकर हम मालिक को भूले बैठे हैं, इस शरीर में आने का उद्देश्य और मतलब भूले बैठे हैं। जब हमारे पास धन-दौलत नहीं रहती तो हमको अपने भी छोड़ जाते हैं।

नम्रता

सब महात्मा हमें यही उपदेश देते हैं कि इस मनुष्य जन्म में आकर अपनी देह के अन्दर मालिक की खोज करो। लेकिन हम देह के अन्दर मालिक को ढूंढ़ने के बजाय उलटे इस देह के ही मान और अहंकार में फँस जाते हैं। जरा गौर करके देखें कि हम इस शरीर में बैठकर किस चीज का मान और अहंकार करते हैं। क्या जवानी का मान करते हैं? हमने किसी का बुढ़ापा नहीं देखा? क्या हमें

भी इस बुढ़ापे की उमर में नहीं पहुचना है ? स्वास्थ्य और तन्दु-रुस्ती का गरूर करते हैं ? क्या कभी अस्पतालों में बीमारों की हालत नहीं देखी ? रुपये पैसे का अहंकार करते हैं ? क्या बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं, सेठों-साहूकारों को कंगालों की तरह सड़कों पर भटकते नहीं देखा या सुना ? क्या हम दुनिया की हुकूमत या इज्जत और मान-प्रतिष्ठा का अहंकार करते हैं ? बड़े-बड़े लीडरों, नेताओं और तानाशाहों को फाँसी के तख्तों पर चढ़ते नहीं सुना या गोलियों के शिकार बनते नहीं देखा ? रातों-रात अचानक हुकूमत के तख्ते पलट जाते हैं, दूसरी पार्टी उनको उठाकर जेलखानों में डाल देती है या तोपों का शिकार बना देती है। फिर हम गरूर और अहंकार किस बात का करते हैं ? कबीर साहिब समझाते हैं—

"लकड़ी कहे लुहार को, तू क्या जारे मोहिं।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं जारूँगी तोहिं॥
माटी कहे कुम्हार को, तू क्या रूँदे मोहिं।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं रूँदूंगी तोहि॥"

लुहार लकड़ी को जला-जलाकर उसके कोयले बनाता है, पर लकड़ी उससे कहती है कि कभी उस वक्त को भी अपनी आंखों के आगे रखकर सोच, जब मैं तुझे साथ लेकर तेरे भी इसी तरह कोयले बना दूंगी। कुम्हार मिट्टी को रौंद-रौंद कर उसके बर्तन बनाता है, लेकिन मिट्टी उससे कहती है कि एक दिन मैं भी तुझे अपने साथ लेकर इसी तरह रूँध डालूंगी। स्वामीजी महाराज भी यही फरमाते हैं—

"मन रे क्यों गुमान अब करना।
तन तो तेरा खाक मिलेगा चौरासी जा पड़ना॥"

महात्मा इसलिये हमें उपदेश देते हैं कि मन में हमेशा नम्रता, विनय और दीनता रखना चाहिये। जितनी नम्रता और दीनता हमारे अन्दर होगी, उतना ही हमारा खयाल मालिक की भक्ति की

ओर जायेगा और हमें मालिक की बख्शिश मिलेगी। बाइबिल में भी इस नम्रता और दीनता के बारे में लिखा है—

"धन्य हैं वे जो अन्तर में दीन हैं, क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है।" (मेथ्यू ५:३)

"जो नम्र हैं वे धन्य हैं, क्योंकि वे ही पृथ्वी के अधिकारी होंगे।" (मेथ्यू ५:५)

"जो अपने आपको इस बालक के समान छोटा करेगा, वह स्वर्ग के राज्य में सबसे बड़ा होगा।" (मेथ्यू १८:४)।

और फिर कहते हैं, "मैं तुमसे सच कहता हूँ कि अगर तुम बदल कर छोटे बच्चों के समान नहीं बनते, तुम प्रभु के दरबार में प्रवेश नहीं कर सकते।" (मेथ्यू १८:३)

स्वामी जी महाराज का भी यही उपदेश है—

"दीन गरीबी चित्त में धरना। काम क्रोध से बचना।"

इसी प्रकार गुरु नानक साहिब प्रार्थना करते हैं—

"कहु नानक हम नीच करंमा। सरण पड़े की राखहु सरमा॥"

इस कोटि के महात्मा होकर अपने बारे में कितने नम्र और दीनतापूर्ण शब्दों का उपयोग करते हैं। गुरु नानक साहिब अपनी वाणी में कई जगह अपने आपको 'लाला गोला' (सेवक और गुलाम), दासों का दास, 'नीच करम्मा' कहते हैं। हमें इन महात्माओं के जीवन से शिक्षा लेनी चाहिये जो धुर-धाम पहुँच कर, कुल-मालिक बनकर भी डींग नहीं मारते। हमारे हाथ कोई साधारण-सी भी सत्ता या हुकूमत आ जाये तो हम इन्सान को इन्सान ही नहीं समझते। कबीर साहिब समझाते हैं—

"बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जब मन खोजा आपना, मुझसा बुरा न होय॥
कबीर सब से हम बुरे, हम तें भल सब कोय।
जिन ऐसा करि बूझिया, मीत हमारा सोय॥"

महात्माओं का हमें समझाने का सिर्फ यही मतलब है कि घमण्ड और अहंकार किसी चीज़ का नहीं करना चाहिये। मनुष्य के चोले में बैठकर मन में नम्रता, दीनता और आजिज़ी रखना चाहिये और नाम की कमाई करना चाहिये, क्योंकि नाम की कमाई ही हमारा साथ देगी और तभी हमारा देह में आने का ध्येय पूर्ण हो सकेगा। दादू साहिब का कथन है—

"क्या मुख ले हँस बोलिए, दादू दीजे रोय।
जनम अमोलक आपना, चले अकारथ खोय॥"

यही महात्मा चरनदासजी अपनी वाणी में लिखते हैं—

"हाथी घोड़े धन घना, चन्द्रमुखी बहु नार।
नाम बिना जमलोक में, पावत दुःख अपार॥"

यही गुरु नानक साहिब लिखते हैं—

"बिन नामै को संग न साथी, मुकते नाम धिआवणिआ।"

परमात्मा की कृपा

जब हमारे अन्दर नम्रता और दीनता आयेगी तो हमारा ध्यान मालिक की भक्ति और प्यार की ओर जायेगा। यह केवल संतों की संगति के द्वारा ही सम्भव हो सकता है। और ऐसे सन्तों की संगति मालिक की बख्शिश और कृपा से ही मिलती है, सच तो यह है कि मालिक बख्शिश करे तब ही हमारा खयाल उसकी भक्ति और प्यार की ओर जाता है। गुरु अमरदासजी फरमाते हैं—

"हरि साचे भावै सा पूजा होवै भाणा मन वसाई॥"

अर्थात् उस मालिक को मंजूर होगा तब ही हम उसकी भक्ति कर सकेंगे। हम दुनिया के जीव अन्धे हैं। अन्धे को ताकत नहीं कि वह आंखों वाले को पकड़ सके, जब तक कि आंखों वाला अधे

को आवाज़ देकर पास नहीं बुलाता या अपनी अँगुली पकड़ा कर उसे अपने साथ नहीं ले चलता। हम दुनिया के जीव इस माया के जाल में फँसकर मालिक को भूलकर बिलकुल अन्धे और बहरे हो गये हैं। मालिक ही कृपा करे तो हमारा खयाल उसकी भक्ति को ओर जा सकता है। गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"जीवण मरणा सब तुधै ताईं। जिस बखसे तिस दे वडिआई॥"

इसी प्रकार कबीर साहिब फरमाते हैं—

"साहिब से सब होत है, बन्दे ते कछु नाहिं।
राई ते परबत करै, परबत राई नाईं॥
ना कछु किया न करि सका, न करने जोग सरीर।
जो कछु किया साहिब किया, तातें भया कबीर॥
न कछु किया न कर सके, नहिं कछु करने जोग।
जो कछु किया सो हरि किया, दूजा थापे लोग॥
जो कछु किया सो तुम किया, मैं कछु कीया नाहिं।
कहौं कहीं जो मैं किया, तुम ही थे मुझ माहिं॥"

इसी तरह हज़रत ईसा भी बाइबिल में कहते हैं, "इसीलिए मैंने तुमसे कहा था कि कोई भी मनुष्य मेरे पास नहीं आ सकता, जब तक कि मेरे पिता से उसे यह बख्शिश न मिली हो।" (जॉन ६:६५)।

"कोई मनुष्य मेरे पास नहीं आ सकता जब तक कि पिता जिसने मुझे भेजा है उसे खींच न ले।" (जॉन ६:४४)

अर्थात् जीव की कोई ताकत नहीं कि वह मालिक की ओर आये, जब तक कि मालिक ही उस पर यह बख्शिश न करे।

पाँचवी पातशाही गुरु अर्जुनदेवजी 'बारहमाहा' शुरू करने से पहले लिखते हैं—

"किरत करम के बीछुड़े करि किरपा मेलहु राम॥"

हे परमात्मा ! हम अपने कर्मों के कारण तुझसे बिछुड़े हुए फिर रहे हैं। हमारे अपने वश में नहीं कि तुझ तक पहुँच सकें। तू ही हम पर दया मेहर और बख्शिश करे तो हम तुझ तक पहुँच सकते हैं। आगे फरमाते हैं—

"आपण लीआ जे मिलै, बिछुड़ि किउं रोवन ।
साधू संग परापते नानक रंग मानंन ॥"

हे परमात्मा ! अगर हमारे अपने वश में हो कि तुझ तक पहुँच सकें, तो किसका दिल करता है कि तुझ से बिछुड़ कर इस चौरासी के जेलखाने में भटकता फिरे। हमारे वश में ही नहीं कि हम अपने आप तुझ तक पहुंच सकें।

हज़रत ईसा भी यही कहते हैं कि परमात्मा ने ही मेरे सुपुर्द जो जीव किये हैं, मैं उनके लिए दुआ करता हूँ, न कि तमाम दुनिया के लिये। उनका कथन है, "मैं दुनिया के लिए विनती नहीं करता, बल्कि सिर्फ उनके लिए करता हूँ जिन्हें तूने मुझे दिया है, क्योंकि वे तेरे हैं।" (जॉन १७:९)

गुरु नानक साहिब ने तो मालिक के बारे में यहाँ तक कहा है—

"खोटे खरे तुध आपि उपाए। तुध आपे परखे लोक सबाए ॥
खरे परखि खजानै पाए, खोटे भरम भुलावणिआ ॥"

हे परमात्मा ! सब दुनिया के जीव तूने आप पैदा किये हैं। खोटे भी तूने ही पैदा किये हैं और खरे भी तूने ही बनाये हैं। और तू खुद ही दोनों को परखने बैठ गया है कि कौन खरा है और कौन खोटा। जिनको तू खुद अपनी परख के काबिल बना लेता है उनको तू अपने खजाने में दाखिल या जमा कर लेता है। बाकी सब भ्रमों में फँस कर भूले फिरते हैं।

परमात्मा जब भी दया-मेहर करता है सन्तों-महात्माओं के ज़रिये ही करता है, बल्कि खुद मनुष्य के चोले में बैठकर हमारे

अन्दर अपने मिलने का शौक और प्यार पैदा करता है, हमसे अपनी भक्ति करवाकर अपने साथ मिला लेता है। तीसरी पातशाही गुरु अमरदासजी लिखते हैं—

"करम होवै सतगुरु मिलाए। सेवा सुरत सबद चित लाए॥"

मालिक ने कृपा की तो हमें सतगुरु की सोहबत और संगति प्राप्त हुई। उसके बाद हम पर सतगुरु की बख्शिश हुई और उन्होंने हमारी सुरत या आत्मा को शब्द से जोड़ दिया, जिसका अभ्यास करके दुनिया से हमारा मोह निकल जाता है और मालिक का प्यार पैदा हो जाता है। हज़रत ईसा भी कहते हैं, "तुमने मुझे नहीं चुना, बल्कि मैंने तुम्हें चुना है और तुम्हें आदेश दिया है ताकि तुम जाकर फल लाओ।" (जान १५:१६)। फिर फरमाते हैं, "जब तक मनुष्य को परमात्मा की ओर से न दिया जाये, तब तक वह कुछ नहीं पा सकता।" (जान ३:२७) अर्थात् जीव के वश में कुछ नहीं जब तक कि उस पर मालिक और गुरु की बख्शिश न हो।

इसी प्रकार गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"आपे करता करे कराए, आपे सबद गुरु मन वसाए॥"

जो कुछ भी करता है वह परमात्मा खुद करता है। जब वह हमें अपने साथ मिलाना चाहता है तो सतगुरु के जरिये हमारे खयाल को शब्द से जोड़ देता है। सन्त-महात्मा मालिक के भेजे हुए ही आते हैं और जिन जीवों पर मालिक की बख्शिश होती है उन्हीं को अपने साथ लेकर मालिक के अन्दर समा जाते हैं। हजरत ईसा ने भी इसी का जिक्र किया है, "मैं उनमें और तू मुझ में, कि वे पूर्ण होकर एक हो जावें और संसार जान ले कि तूने मुझे भेजा है, और उन्हें प्यार किया है जैसा कि तूने मुझे प्यार किया है।" (जान १७:२३)।

सन्तों का संदेश

हरएक महात्मा का केवल यही उपदेश है कि परमात्मा एक है, हमारी आत्मा उस परमात्मा का अंश है, उससे मिलकर ही हम जन्म-मरण के दुखों से बच सकते हैं। वह परमात्मा हरएक के शरीर के अन्दर है और मनुष्य के चोले में आकर ही हम उसे प्राप्त कर सकते हैं। हमारे अन्दर हमारे मन की रुकावट है जिसके कारण हम उस परमात्मा को अपने अन्दर देख नहीं सकते। यह मन की रुकावट शब्द या नाम की कमाई के द्वारा ही हमारे अन्दर से दूर होती है। वह नाम या शब्द और मालिक से मिलने का रास्ता भी खुद मालिक ने हमारे अन्दर ही रखा है। सन्तों की संगति से ही हम अपने अन्दर उस रास्ते को ढूँढ़ सकते हैं और नाम या शब्द से अपना खयाल जोड़ सकते हैं।

इसी नाम या शब्द को हज़रत ईसा ने 'वर्ड' (शब्द) और 'चेतन जल' कहा है। वे कहते हैं, "जो कोई उस जल में से पियेगा, जो मैं उसे दूँगा, वह फिर कभी प्यासा न होगा। लेकिन वह जल जो मैं उसे दूँगा, उसके अन्तर में एक जल का सोता बन जायेगा जो अनन्त जीवन में उमड़ पड़ेगा।" (जान ४:१४)

गुरु नानक साहिब इसी को अमृत कहकर समझाते हैं। मुसलमान फकीर इसे आबे-कौसर और आबे-हयात कहते हैं, क्योंकि इसको प्राप्त करके हम हमेशा के लिए जीवित या जागृत हो जाते हैं और देह के बन्धनों से बच जाते हैं। ऐसे अमृत को प्रदान करनेवाले सन्तों की संगति हमें हमेशा परमात्मा की दया-मेहर और बख्शिश से ही प्राप्त हो सकती है। सन्त दुनिया में मालिक से मिलने की कोई नई फिलॉसॉफी, शिक्षा या रीति लेकर नहीं आते। सब सन्त उस एक ही फिलॉसॉफी और सिद्धान्त को समझाते हैं। लेकिन हम उनके जाने के बाद बाहर-मुखी हो जाते हैं, असलियत और सच्चाई को भूल जाते हैं। फिर कोई और महात्मा किसी और जगह

आकर हमें उसी असलियत की याद दिलाता है और हमारे विचारों को वहमों और भ्रमों से निकालता है। यह मालिक ने अपने मिलने का कुदरती कानून व तरीका बना रखा है। वे महात्मा इस कुदरती कानून के बारे में ही याद दिलाते हैं, अपने पास से कोई नई शिक्षा नहीं देते। हज़रत ईसा बाइबिल में कहते हैं, "क्योंकि मैंने अपनी ओर से कुछ नहीं कहा, बल्कि पिता जिसने मुझे भेजा है उसी ने मुझे हुक्म दिया है कि मैं क्या कहूँ और क्या समझाऊँ।" (जॉन १२:४६)

एक और स्थान पर कहते हैं, "मेरा उपदेश मेरा नहीं, बल्कि मेरे भेजने वाले का है।" (जॉन ७:१६)

सन्तों की शिक्षा का आधार उनका निजी अनुभव होता है। वे ग्रन्थ-पोथियाँ पढ़कर सुनी-सुनाई बातें नहीं करते। वे तो जो कुछ आँखों से देखते हैं और जो उनका अपना अनुभव होता है, उसी का वर्णन करते है।

गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"संतन की सुन साची साखी। सो बोलहि जो पेखहि आँखी॥"

फिर समझाते हैं—

"जैसी मै आवै खसम की बाणी, तैसड़ा करी गिआन वे लालो॥"

महात्मा जो भी ज्ञान परमात्मा से लेकर आते हैं, वही हमें समझाते हैं। दादू साहिब भी यही कहते हैं—

"दादू देखा दीदा सब कोई कहत शुनीदा।"

इसी प्रकार तुलसी साहिब फरमाते हैं—

"निज नैना देखा हिये आँखी, जस-जस तुलसी कह कह भाखी।"

अर्थात् मैंने जो कुछ आँखों से देखा है, वही समझा रहा हूँ। दुनिया के लोग तो सुनी सुनाई बातें करते हैं।

हज़रत ईसा भी यही कहते हैं, "मैं तुझसे सच कहता हूँ कि हम जो जानते हैं वही कहते हैं और जिसे हमने देखा है उसी की गवाही देते हैं।" (जान ३:११)

राधास्वामी सत्संग
ब्यास (भारत)